ट्रीय चेतना एवं सामाजिक-सांस्कृतिक
गतिविधियों का मनोरंजक दिग्दर्शक

सर्वसत्ता

'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'
के उद्घोषक

अगस्त
१९६६

४०
पैसे

लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक

जन्म २३ जुलाई १८५६ • निधन १ अगस्त १९२०

'सर्वसखा' का दृष्टिकोण

'सर्वसखा' का उद्देश्य इसके नाम में निहित है। सर्वकल्याण और विश्वमैत्री के दिव्य भाव अपने अन्तर में सँजोये यह प्रकाश में आ रहा है।

'सर्वसखा' वर्गवाद, दलबन्दी और साम्प्रदायिकता की संकुचित तथा टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में न भटक राष्ट्रीयता के सुविशाल एवं सुविस्तीर्ण राजमार्ग पर अग्रसर होगा।

देश में व्याप्त अनाचार - भ्रष्टाचार तथा सामाजिक कुरीतियों को समूल नष्ट कर सत्य, न्याय, सदाचार आदि भव्य भावों के नव-निर्माण में सहायक होना 'सर्वसखा' का मन्तव्य होगा।

पारस्परिक वैमनस्य एवं कलुषित भेद-भाव का अंकुर रोपने वाले तथा दूषित वातावरण के पोषक राष्ट्र-विरोधी तत्वों के प्रभाव में आकर उनसे समझौता करना 'सर्वसखा' के दृष्टि-पथ से बाहर होगा।

देश में सच्ची नागरिकता के उन्मेष के हित प्रयत्नशील रहने में 'सर्वसखा' अपना अहोभाग्य समझेगा।

विभिन्न क्षेत्रों एवं दिशाओं में देश-देशान्तरों में हो रही नित-नवीन गति-विधियों से जन-सामान्य को परिचित कराना 'सर्वसखा' का ध्येय होगा।

दिन दूनी, रात चौगुनी सुरसा के शरीर के समान बढ़ती हुई महँगाई और उसके साथ ही व्यापक बेरोजगारी से उत्पन्न नाना समस्याओं पर समुचित विचार-विनिमय 'सर्वसखा' के क्रीडा-क्षेत्र की परिधि में होगा। समय-समय पर विभिन्न घरेलू और सरल उद्योगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी भी देने की योजना है।

शिक्षा - जगत् की हलचलों तथा साहित्यिक क्षेत्र की नवीनतम शोधों को विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं तक प्रेषित करने का 'सर्वसखा' सदैव प्रयत्न करेगा।

मानवता के विकास में सहायक सभी अनिवार्य तत्वों पर सम्यक् रीति से प्रकाश डालना 'सर्वसखा' का सर्वोपरि लक्ष्य है।

'सर्वसखा' की सफलता आप सभी सुहृदों के स्नेह-सिक्त सहयोग पर निर्भर है। 'सर्वसखा' को युगानुरूप सर्वोपयोगी बनाने के लिए आपके सुझाव और शुभ सम्मतियाँ सहर्ष आमन्त्रित हैं।

'सर्वसखा' का **वार्षिक शुल्क चार रुपये मात्र** है। मनीआर्डर द्वारा भेजकर स्वयं भी सदस्य बनिए और अपने मित्रों-परिचितों को भी सदस्य बनने की प्रेरणा देकर राष्ट्र व मानव-जाति के नव-निर्माण के पुनीत कार्य में सहायक होकर यश और पुण्य के भागी बनिए।

—रामकृष्णदास 'रसिक'

ज्ञान-प्रसार के पावन-पर्व श्रावणी के उपलक्ष्य में

'सर्वसखा' की ओर से अनुपम भेंट

'सन्त-वाणी-वीथिका'

कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, हितहरिवंश, नन्ददास, कुम्भनदास, सूरदास मदनमोहन, भगवतरसिक, ललितकिशोरी, दादूदयाल, रैदास, मलूकदास, दरिया साहब, सहजोबाई, रहीम, रसखान, यारी साहब, खुसरो, नजीर, ताज, शेख, करीमबख्श, आदिल, मकसूद, मंसूर, निजामुद्दीन औलिया, ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, नरसी, मोरोपन्त, सुन्दरदास, समर्थ गुरु रामदास, रज्जब, विद्यापति, बैजू बावरा, तानसेन, नाभादास, पल्टू साहब, गुरु नानक, गुरु अङ्गद जी, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दीनदयाल गिरि, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महावीर, बुद्ध, ऋषि दयानन्द, महात्मा गाँधी आदि

सभी प्रमुख सन्त साधकों, कवियों, कवयित्रियों का परिचय
एवं उनकी भावपूर्ण अमर वाणियों, सरस पदों और
सर्वहितकारी उपदेशों का अभूतपूर्व सङ्कलन

इन्हें पढ़ते-गाते आप आत्मविभोर होकर निरतिशयानन्द प्राप्त करेंगे !

साहित्य-प्रेमियों, विद्यार्थियों, गायकों, उपदेशकों, प्रचारकों, विचारकों, साधकों, जिज्ञासुओं, आत्म-चिन्तकों तथा सभी मतावलम्बी संन्यासी महात्माओं एवं कथावाचकों के लिए परम उपयोगी, पठनीय और संग्रह-योग्य

बढ़िया कागज, शुद्ध व सुन्दर छपाई, मूल्य १॥) मात्र

१० प्रतियाँ १२॥), २५ प्रतियाँ ३०), ५० प्रतियाँ ५५)

१०० प्रतियाँ १००) रुपये मात्र

वी० पी० पी० खर्च अलग

मूल्य पेशगी भेजने पर डाक - व्यय माफ

—: आवश्यक सूचना :—

'सर्वसखा' के स्थायी सदस्यों को यह विशेषाङ्क बिना अतिरिक्त मूल्य ही प्राप्त होगा। यदि आपने 'सर्वसखा' का वार्षिक शुल्क अभी तक नहीं भेजा है, तो तुरन्त ही ४) रुपये मनी - आर्डर द्वारा भेजकर 'सर्वसखा' के सदस्य बनिए और 'सन्त - वाणी - वीथिका' विशेषाङ्क बिना मूल्य प्राप्त कीजिए ! इस स्वर्ण अवसर को न चूकिए !

याद रखिए !

'सर्वसखा' में कम - से - कम १००० पृष्ठों की मनोरञ्जनपूर्ण ज्ञानवर्द्धक सुन्दर सुपाठ्य सामग्री प्रति वर्ष देने की विशाल योजना है !

वार्षिक शुल्क : : ४) रुपये मात्र

सभी मतावलम्बी संस्थाएँ, पुस्तकालय एवं विक्रेता अधिक - से - अधिक प्रतियाँ मँगाकर ज्ञान - प्रसार में सहयोग दें और लाभ उठाएँ !

कृपया अपना आदेश अभी भेज दीजिए !

व्यवस्थापक—'सर्वसखा', २०३४ बाजार सीताराम, दिल्ली—६

पूज्य महात्मा गाँधी जी ने कहा था–

"परिवार को सभ्य, सुशिक्षित और सुखमय बनाने के लिए श्रेष्ठ पुस्तकों का संग्रह अपने यहाँ रखिए। कोई भी घर बिना पुस्तकालय के नहीं होना चाहिए।"

सामाजिक-सांस्कृतिक-ज्ञानवर्द्धक-मनोरंजक साहित्य मँगाइए !

श्री रामकृष्णदास 'रसिक' द्वारा लिखित - सम्पादित पुस्तकें

श्री राम - उपासना	४.५०	वर्ष भर के व्रत और त्योहार	४.५०
श्री कृष्ण - उपासना	४.५०	सर्वदेव पूजा (मूल)	०.७५
श्री शिव - उपासना	४.५०	सर्वदेव पूजा (भाषा - टीका)	१.५०
श्री दुर्गा - उपासना	८.२५	श्रीराम - रूप - माधुरी	०.५०
श्री हनुमान - उपासना	४.५०	नित्य - कर्म - दीपिका	०.३०

आलोचनात्मक साहित्य

राम - भक्ति शाखा	२०.००	रामचरित-मानस का कथा-शिल्प	४.५०
तुलसीदास की भाषा	१०.००	मानस - दर्शन	४.००
रामचरितमानस और साकेत	५.००	हनुमान - जीवन - चरित्र	३.५०
तुलसी - मानस - रत्नाकर	८.५०	मानस की रूसी भूमिका	३.५०
तुलसीदास का कथा - शिल्प	८.००	पंचांग - परिचय	२.००
तुलसीदास और उनका साहित्य	७.००	महामति चाणक्य राजदूत बने	४.३७
तुलसीदास का प्रगीत - काव्य	७.००	पुस्तकालय - प्रबन्ध	५.००
रामायण - कथा	४.५०	गोस्वामी तुलसीदास	३.००
तुलसी की काव्य - कला	१२.५०	पुराण - कथा - कौमुदी	१०.००

डाक-व्यय अलग होगा। २) रुपये से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायेगी।

आपको किसी भी पुस्तक की आवश्यकता हो, आप हमें पत्र लिखें।
हम आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

सर्वसखा प्रकाशन, २०३४ बाजार सीताराम, दिल्ली - ६

सर्वसखा

वर्ष १ अगस्त १९६६ अंक ८

क्या ? कहाँ ?

गोवर्धन-धारण : इन्द्र-गर्व-मर्दन ५
कुछ शुभकामनाएँ एवं सम्मतियाँ ६
सम्पादकीय :
भारतीय स्वतन्त्रता अमर रहे ! ९
प्रह्लाद पर भगवान की स्नेहार्द्रता १०
वह देश देयनीय है ! १०
साहित्य-उपवन :
'मानस' में मुनियों की प्रतिष्ठा एवम् महत्व ११
अध्ययन की रीति १५
श्री रामकृष्णपरमहंस-वचनामृत १६
लोकमान्य तिलक के प्रेरक संस्मरण १८
साधु - जीवन का महत्व १९
सन्त - असन्त - स्वभाव २०
उठ खड़ा हो, हिम्मत न हार ! २०
भौतिकवाद और अध्यात्मवाद २१
सुयश है राम-कृष्ण का शेष ! २४
दुष्ट - भाव के विप्र २४
मैं पी-एच० डी० २५
दोषी कौन ? २६
हाई कोर्ट के जज थाने में ! ३६
पति - पत्नी - संवाद ३८
इठलाइयाँ ३८

क्या ? कहाँ ?

घरेलू सरल उद्योग :
रद्दी और बेकार चीजों से पैसा कमाइए ! ३९
हँसी की फुहार ४१
स्वास्थ्य - साधना :
इन गलतियों से बचिए ! ४२
वर्षा में स्वास्थ्य ४३
सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर :
पाठकों की समस्याएँ ४४
कुछ आधुनिक परिभाषाएँ ४५
नारी - लोक :
गृहस्थ - जीवन को सुखमय बनायें ! ४६
नीबू : एक सौन्दर्य - प्रसाधन ४८
अगस्त १९६६ के प्रमुख व्रत-त्योहार ४९
सर्वोत्तम जल ५०
अगस्त महीने का ऐतिहासिक महत्व ५१
बाल सभा :
१५ अगस्त ५२
मेरे चहेते ! ५३
सुहानी वर्षा ५५
बाल - सभा के सदस्य बनिए ५६

'सर्वसखा' का अगला अङ्क 'सन्त-वाणी-वीथिका' विशेषाङ्क होगा।

समता और सद्भाव का प्रमुख प्रसारक
अपने ढंग का अनूठा पारिवारिक पत्र

सर्वसखा

मासिक

सञ्चालक
रामकृष्णदास 'रसिक'

२०३४ बाजार सीताराम
दिल्ली-६

वार्षिक शुल्क ४) रुपये मात्र

वर्ष १] दिल्ली, अगस्त १९६६ [अङ्क ८

गोवर्द्धन - धारण : इन्द्र - गर्व - मर्दन

ब्रज पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए॥
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो मन गगन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर॥
बार बार पबिपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल।
सीत सभीत पुकारत आरत गो सुत गोपी ग्वाल॥
राखहु राम कान्ह यहि अवसर, दुसइ दसा भइ आइ।
नंद बिरोध कियो सुरपति सों, सो तुम्हरोइ बल पाइ॥
सुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपनी सो करि गयो गर्ब गँवाइ॥

—श्रीकृष्णगीतावली

कुछ शुभकामनाएँ एवं सम्मतियाँ

सञ्चार एवं संसत्कार्य मन्त्री, भारत
नई दिल्ली
जून १९, १९६६

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'सर्वसखा' मासिक पत्र का प्रकाशन राष्ट्र के नव - निर्माण को दृष्टि में रखते हुए भारत की एकता और भारतीयता की लक्ष्यपूर्त्ति के लिए किया जा रहा है। मैं आशा करता हूँ, यह मासिक पत्र अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उक्त विचारों का प्रसार करेगा। इसकी सफलता के लिए मैं अपनी शुभ - कामनाएँ भेजता हूँ।

सत्यनारायण सिंह

महेन्द्र साहित्य सदन
नयापुरा, कोटा

'सर्वसखा' के दो अंक देखे। देश को नैतिक और आध्यात्मिक जागृति के लिए देश में जो प्रयत्न हो रहे हैं, उनमें यह प्रयत्न सर्वथा अभिनन्दनीय है। पाश्चात्य सम्पर्क और वर्षों की गुलामी के कारण आज हमारा सामाजिक वातावरण ऐसा है जिसमें बुराइयाँ अधिक और अच्छाइयाँ कम हैं। फिल्मी तथा सस्ती कामुकतापूर्ण पत्र - पत्रिकाओं ने एक प्रकार की दिमागी ऐयाशी उत्पन्न कर दी है। फलस्वरूप गन्दा साहित्य पढ़ - पढ़ कर बच्चे कुसंस्कारी बनते जा रहे हैं। 'सर्वसखा' एक ऐसी विचार-क्रान्ति उत्पन्न कर रहा है, जिससे सही दिशाओं में जन - जागरण हो सकेगा। इस क्रान्ति और नव - प्रेरणा की प्रचुर सामग्री इस पत्र में निहित है। नवनिर्माण के मोर्चे पर बढ़ाने वाली इस पत्रिका का मैं स्वागत करता हूँ।

डा० रामचरण महेन्द्र
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर गवर्नमेन्ट कालेज, कोटा

राजौरी गार्डन
नई दिल्ली–१५

बन्धुवर 'रसिक' जी,

नमस्कार !

'सर्वसखा' का जून अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद ! मैं इस पत्र का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। 'सर्वसखा' सत्य, शिव और सुन्दर के सरस समन्वय का सद् प्रयास है। प्रभु राम आपकी इस स्तुत्य साधना को अधिकाधिक फलीभूत करें। मैं इसके लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

शुभाकांक्षी :
दर्शनलाल सेठी
एम. ए., साहित्यरत्न, 'रिसर्च-स्कालर'

१२ जून १९६६

आपका भेजा जून १९६६ का 'सर्वसखा' का अङ्क मिला, धन्यवाद। मैंने आपके पत्र को आद्योपान्त पढ़ा। इसके लेख पठनीय, संग्रहणीय और मनन योग्य हैं। आपका पत्र पुष्पित और पल्लवित हो। इसकी मधुर गन्ध दिग्दिगन्त में व्याप्त हो और इसके मधुर फल भारतीयों को सदा खाने को मिलते रहें, यही जगन्नियन्ता से प्रार्थना है।

• कविराज पं० धर्मेन्द्रनाथ शर्मा
शास्त्री, व्याकरण, सांख्य तीर्थ, आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि
वाइस प्रिंसिपल महर्षि दयानन्द शुद्ध आयुर्वेदिक कालेज, टङ्कारा

'सर्वसखा' नियमित मिल रहा है। प्रत्येक अङ्क में सामग्री का चयन सुन्दर है। प्रतिमास एक नया निखार एवं सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। बाल-वृद्ध, युवक और युवती, स्त्री तथा पुरुष सभी के लिए अपनी-अपनी रुचि की सामग्री इसमें विद्यमान है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आपका यह सत्प्रयत्न सफल हो। 'सर्वसखा' दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति करते हुए अपने पाठकों के जीवनों को भी आलोकित करने में सफल हो।

• ब्र० जगदीश विद्यार्थी एम. ए., साहित्यरत्न
आदरी सम्पादक 'वेदप्रकाश'

भारतीय स्वतन्त्रता अमर रहे !

१५ अगस्त १९४७ को भारत विदेशी सत्ता के चंगुल से मुक्त हुआ। इस दिन का महत्त्व अपने आप में ही निहित है। विगत वर्षों में भारत ने आर्थिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो अभूतपूर्व प्रगति की वह भारतीय जनता के लिए गर्व तथा हर्षोल्लास का विषय है। 'सर्वसखा' अपनी मातृभूमि के इस पवित्र पर्व का हार्दिक अभिनन्दन करता है तथा शुभकामना करता है कि भारत और भी अधिक द्रुत गति से प्रगति-पथ पर अग्रसर हो एवं संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करने में सहायक हो।

यह राष्ट्रीय दिवस हमारे लिए अपार हर्ष का सन्देश ही नहीं लाता बल्कि हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देता है। आज हमें प्रत्येक बात को व्यक्तिगत या संकुचित दृष्टिकोण से नहीं प्रत्युत राष्ट्रीय, व्यापक दृष्टि-कोण से देखने तथा छोटी-छोटी बातों के पचड़े में न पड़, अपनी सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित करके बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय समस्याओं के निराकरण में लगाने का दृढ़ संकल्प लेना है। तभी हम प्रगति-पथ पर निर्बाध गति से बढ़ने की आशा कर सकेंगे।

साथ ही, आज के हर्षोल्लासमय वातावरण में स्वाभाविक है कि हमारा ध्यान आजादी के उन परवानों की ओर जाये जिनके बलिदान के फलस्वरूप ही हमारी स्वतन्त्रता की साध पूरी हुई है। महारानी झाँसी, तांत्या टोपे, बहादुरशाह जफर से लेकर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस और पूज्य बापू महात्मा गांधी तक अनेक जाने-अनजाने वीरों ने स्वतन्त्रता की महान बलिवेदी पर हँसते-हँसते प्राणों की आहुतियाँ दी हैं। उनकी स्मृति में हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाना स्वाभाविक है।

प्रह्लाद पर भगवान की स्नेहार्द्रता

क्वेदं वपुः क्व च वयः सुकुमारमेतत्
क्वैताः प्रमत्तकृत दारुणयातनास्ते ।
आलोचितं विषयमेतदभूतपूर्वं
क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये बिलम्बः ।।

कहाँ तुम्हारा कोमल तन यह कहाँ अवस्था यह सुकुमार ।
कहाँ मत्त निशिचर के द्वारा दारुण विपदाओं का भार ।।
अहो ! हुआ कैसा अद्भुत यह काण्ड न पाया कुछ अवलम्ब ।
क्षमा करो हे वत्स ! मुझे यदि आने में हो गया विलम्ब ।।

वह देश दयनीय है !

* वह देश दयनीय है, जो अन्धविश्वासों से पूर्ण है और धर्म से शून्य ।

* वह देश दयनीय है, जो उस कपड़े को पहनता है, जिसे वह स्वयं नहीं बुनता ।

* वह देश दयनीय है, जो निर्दय को शूरवीर मानता है और दमकते हुए विजयी को उदार ।

* वह देश दयनीय है जो सपने में एक इच्छा का तिरस्कार करता है और जागृत अवस्था में उसी के वश में रहता है ।

* वह देश दयनीय है, जो शवयात्रा में चलते समय के अतिरिक्त कभी भी अपनी आवाज नहीं उठाता, अपने खण्डहरों के अतिरिक्त कहीं अपनी बड़ाई नहीं हाँकता और जो बगावत तभी करता है जब उसकी गरदन तलवार और पत्थर के बीच रख दी जाती है ।

• खलील जिब्रान

'मानस' में मुनियों की प्रतिष्ठा एवम् महत्व

श्रीमती कमला वर्मा एम. ए., बी. टी., पी-एच. डी. स्कालर

●●●

गोस्वामी तुलसीदास जी ने स्यात् परम्परा के अनुसार अपने ग्रन्थों में सर्वत्र मुनियों के आदर - सत्कार का विशेष ध्यान रखा है। 'रामचरितमानस' में जहाँ कहीं भी प्रसङ्ग आये हैं वहाँ गुरुओं एवं तपस्वी महात्माओं के प्रति भक्त कवि की पूर्ण निष्ठा दृष्टिगोचर होती है।

बालकाण्ड में तुलसी गुरु की वन्दना इस प्रकार करते हैं—

वंदउँ गुरु पद कंज
कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज
जासु बचन रबि कर निकर॥

तुलसीदास जी परमेश्वर के पश्चात् दूसरा स्थान गुरु को ही देते हैं क्योंकि गुरु ही मनुष्य के अन्दर से माया तथा अविद्या के आवरण को हटाने में समर्थ हो सकता है। कवि के शब्द हैं—

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥

तथा—

सुकृति संभु तन बिमल बिभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।
किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

इस प्रकार कवि ने गुरुजनों को सब प्रकार के ज्ञान का स्रोत मानते हुए बहुत अधिक महत्व दिया है। सज्जनों के संग को तुलसीदास जी सफल जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—

बिनु सत्संग विवेक न होई।

जब ऋषि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मण को लेने के लिए अयोध्यापुरी में आते हैं तो राजा दशरथ उनका आगमन

सुनकर स्वयं उनके स्वागत - हेतु उन्हें लेने के लिए जाते हैं और उनका पद-प्रक्षालन कर स्वयं को धन्य समझते हैं—

मुनि आगमन सुना जब राजा ।
मिलन गयउ लै बिप्र समाजा ।।

किसी भी राजदरबार में मुनियों का उचित स्वागत - सम्मान रामायण - काल की विशेषता थी। तुलसी की धार्मिक प्रवृत्ति ने इस सम्मान को विशेष महत्व दिया।

'मानस' में अहल्या के प्रति गौतम मुनि के शाप की कथा मुनियों के तेजमय जीवन एवं सच्चरित्र को स्पष्ट प्रकट करती है। उस काल के महात्माओं की वाणी जड़ को चेतन तथा चेतन को जड़ बनाने में समर्थ थी। ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रति कवि की वाणी ने अपना उचित सम्मान प्रदर्शित किया है।

जनकपुरी में विश्वामित्र का श्रीराम-लक्ष्मण - सहित प्रवेश सुनकर राजा जनक ने 'कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा'। विश्वामित्र ने ही राजा जनक को बैठाया तभी बैठे अन्यथा वे मुनि के स्वागत में लगे थे। जनक यदि राम - लक्ष्मण का परिचय पूछना चाहते हैं तो भी 'मुनि पद नाइ सिरु'। यदि राम भाई लक्ष्मण को जनकपुरी दिखाना चाहते हैं तो भी गुरु की आज्ञा की आवश्यकता है—

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं ।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ।।
जौं राउर आयसु मैं पावौं ।
नगर देखाइ तुरत लै आवौं ।।

जाते समय 'मुनिपद कमल' की वन्दना करना भी आवश्यक है। तुलसी-दासजी ने श्रीराम व लक्ष्मण के मुख से मुनियों के प्रति अत्यधिक आदर प्रदर्शित करके साहित्य में गुरु - महिमा की छाप लगा दी है। शयन करने से पूर्व भी दोनों भ्राता गुरु के चरण चाँपते हैं—

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते ।
गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ।।

राम यदि विश्राम करने जाते हैं तो गुरु को प्रणाम करके, प्रातः उठते हैं तो गुरु को प्रणाम करके। जिस प्रकार तुलसी ने अपनी रचनाओं में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा का पूर्ण ध्यान रखा है उसी प्रकार गुरुओं एवं महात्माओं के सम्मान की भी उन्हें विशेष रुचि है। अतः किसी भी स्थल पर वे गुरुपद - वन्दना कराना नहीं भूले हैं।

तुलसी गुरु का पद वेद - शास्त्रों की समता में रखते हैं। उनके लिए जितनी

धर्ममय वेदों की वाणी है उतना ही धर्ममय गुरु के द्वारा निर्देशित मार्ग है। वनगमन के समय राम सीता जी को घर पर ही रहने के लिए, समझाते हुए कहते हैं—

गुर श्रुति संमत धरम फलु
पाइअ बिनहिं कलेस।

गुरु के द्वारा बतलाया हुआ मार्ग अवश्य ही उचित है; इसके विपरीत कवि तुलसी कल्पना नहीं कर सकते।

वनवास - काल में राम वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं। राम ऋषि को दण्डवत् करते हैं। अपने वनवास का कारण बताने के लिए वे हाथ जोड़कर उनसे सम्भाषण करते हुए उन्हें त्रिकाल-दर्शी बतलाते हैं। वास्तव में प्राचीनकाल के ऋषि - मुनि महात्मा ही होते थे, उनका त्याग और तपस्या का जीवन सबके लिए प्रभावशाली होना स्वाभाविक ही था। अपनी सात्विक वृत्तियों के कारण ही उनका तेजस्वी व्यक्तित्व समाज के लिए अत्यन्त शक्तिशाली होता था। उनमें सत्य एवं संयम की पराकाष्ठा होती थी। अपने विशेष अध्ययन तथा अनुभव के कारण ही उनका स्थान साधारण जन समूह से ऊँचा होता था। उनकी वाणी अर्थात् शाप अथवा आशीर्वाद कभी निरर्थक नहीं होते थे। राम वाल्मीकि से कहते हैं—

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे।
भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई।
मुनि उदबेगु न पावै कोई॥

वे मुनि - दर्शन से अपना जन्म सफल मानते हैं और निवास के लिए उनसे ऐसा स्थान माँगते हैं जहाँ मुनियों को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँच सके। ऐसे स्थल पर कवि की सूक्ष्मभावना दर्शनीय है। राम स्पष्ट कहते हैं—

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं।
ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥

अर्थात् मुनियों को सताने वाले राजा अपने दुष्कर्मों की अग्नि में भस्म हो जाते हैं। तुलसी की दृष्टि में ऋषि-मुनियों को कष्ट देना भयङ्कर पाप है।

दशरथ की मृत्यु पर भरत-शत्रुघ्न को बुला भेजने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त था कि 'गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाइ' और उधर भरत भी 'गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ'। गुरु के वचनों को सुनकर फिर माता या पिता किसी की भी आज्ञा पाने की आवश्यकता नहीं थी। राजकुमारों के मन में भी गुरुओं के प्रति कितना अधिक

आदरभाव था ? वसिष्ठ ही भरत को धैर्य धारण करने का उपदेश देते हुए राजा की अन्त्येष्टि - क्रिया करवाते हैं, तत्पश्चात् भरत को राज्य ग्रहण करने के लिए धर्म व नीति का उपदेश देते हैं। माता कौसल्या उनकी श्रेष्ठ वाणी का समर्थन करती हैं—

कौसल्या धरि धीरजु कहई ।
पूत पथ्य गुर आयसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी ।
तजिअ बिषादु काल गति जानी ॥

भरत अयोध्या - वासियों सहित राम के पास वन में जाने को तैयार होते हैं, उस समय भी सर्वप्रथम मुनि वसिष्ठ का ही रथ सबसे आगे चलता है—

अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥

भरद्वाज ऋषि के सम्मुख भी तुलसी ने भरत की अतीव विनम्रता का वर्णन किया है। वन में राजा जनक के सम्मुख भरत के मुख से कवि ने स्पष्ट कह दिया है—'कुलगुरु सम हित माय न बापू'।

अरण्य काण्ड में तुलसी ने राम के द्वारा सन्तों के लक्षण वर्णन कराके महापुरुषों के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि विकारों से रहित, सत्यनिष्ठ एवं ज्ञानवान सज्जनों के वश में स्वयं भगवान भी रहते हैं, फिर साधारण मानवों पर उनका प्रभाव पड़ना तो अवश्यम्भावी है ही।

'मानस' के अतिरिक्त अन्य कृतियों में भी कवि ने साधु - महिमा का गान किया है। 'वैराग्य सन्दीपनी' में सरल-स्वभाव, इन्द्रियों पर विजय पाने वाले, रामभक्त एवं परमार्थी सन्तों का महत्त्व प्रकट किया गया है। तुलसी ऐसे महानुभावों की स्तुति करते हैं जो सत्यभाषी और विवेकी होते हैं तथा जो कभी कुपथ - गामी नहीं होते। ऐसे सत्पुरुष के लिए सब समान रूप हैं—

सत्रु न काह करि गनै,
मित्र गनै नहिं काहि ।
तुलसी यह मत संत को,
बोलै समता माहि ॥

ऐसे महापुरुषों के लिए शत्रु और मित्र में कोई अन्तर नहीं। सन्तों की विशेषता तुलसी इस दोहे में प्रकट करते हैं—

एक भरोसो एक बल,
एक आस बिस्वास ।
राम रूप स्वाती जलद,
चातक तुलसीदास ॥

यहाँ कवि का अपना भक्त रूप ही प्रबल हो जाता है। ऐसे राम-भक्त जनों को वे राग-द्वेष से हीन, तृष्णा-रहित तथा विनय की खान समझते हैं जो अपनी कोमल वाणी से अमृत-वर्षा करके भय तथा भ्रम का निवारण कर देते हैं। ऐसे पुरुषों के गुण वेदों में प्रसिद्ध हैं और उन्हीं की वन्दना कवि मन, वचन और कर्म से करते हैं क्योंकि वे महापुरुष श्रीराम के मूर्त्तिमान शरीर ही समझिए।

अन्त में तुलसी इतना ही कहते हैं कि—

महि पत्री करि सिंधु मसि,
तरु लेखनी बनाइ।
तुलसी गनपति सों तदपि,
महिमा लिखी न जाइ॥

'गीतावली' में बालकाण्ड के वर्णन में भी तुलसी ने विश्वामित्र को देखकर राजा दशरथ के मुख से जो वचन कहलवाये हैं वे अपूर्व हैं—

देखि मुनि रावरे पद आज।
भयो प्रथम गनती में अब तें,
हौं जहँ लौं साधु समाज॥
चरन बंदि, कर जोरि निहोरत,
'कहिय कृपा करि काज'।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु,
देह गेह सब राज॥

किन्तु मुनि के वचन वे टाल न सके और—'सौंपे सुत गहि पानि, पाँय परि'।

अध्ययन की रीति

"आजकल सब कुछ सरसरी नजर से पढ़ने की प्रथा चल पड़ी है। इससे पाठक कुछ ग्रहण नहीं कर पाता। अतः बहुत पढ़कर भी हम अशिक्षित रह जाते हैं। पढ़ने का सच्चा लाभ तभी है, जब हम थोड़ा पढ़ें, मगर अच्छा पढ़ें। सारे पुस्तकालय को उदरस्थ करने की अपेक्षा दो पुस्तकों को कण्ठस्थ कर लेना अधिक श्रेयस्कर है।"

—सर विलियम राबर्टसन

श्री रामकृष्ण परमहंस-वचनामृत

एक चोर आधी रात को किसी राजा के महल में घुसा और राजा को रानी से यह कहते सुना कि 'मैं अपनी कन्या का विवाह उस साधु से करूँगा जो गङ्गा के किनारे रहता है।' चोर ने सोचा कि 'यह अच्छा अवसर है। कल मैं भगवा वस्त्र पहनकर साधुओं के बीच जा बैठूँगा। सम्भव है राजकन्या का विवाह मेरे ही साथ हो जाये।' दूसरे दिन उसने ऐसा ही किया। राजा के कर्मचारी सब साधुओं से राजकन्या के साथ विवाह कर लेने की प्रार्थना करने लगे, लेकिन किसी ने स्वीकार नहीं किया, तब वे उस चोर संन्यासी के पास गये और वही प्रार्थना उन्होंने उससे भी की, तब उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कर्मचारी लौटकर राजा के पास गये और कहा कि 'महाराज ! और तो कोई साधु राजकन्या के साथ विवाह करना स्वीकार नहीं करता। एक युवा संन्यासी अवश्य है, सम्भव है वह विवाह करने को तैयार हो जाये।' राजा उसके पास स्वयं गया और राजकन्या के साथ विवाह करने के लिए अनुरोध करने लगा। राजा के स्वयं आने से चोर का हृदय एकदम बदल गया। उसने सोचा, 'अभी तो केवल संन्यासी के कपड़े पहनने का यह परिणाम हुआ है कि इतना बड़ा राजा मुझसे मिलने के लिए स्वयं आया है। यदि मैं वास्तव में सच्चा संन्यासी बन जाऊँ तो न मालूम आगे अभी और कैसे अच्छे-अच्छे परिणाम देखने में आयें।' इन विचारों का उस पर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि उसने विवाह करना एकदम अस्वीकार कर दिया और उस दिन से वह एक अच्छा साधु बनने के प्रयत्न में लगा। उसने विवाह जन्म भर न किया और अपनी साधनाओं से एक पहुँचा हुआ संन्यासी हुआ। अच्छी बात की नकल से भी कभी-कभी अनपेक्षित और अपूर्व फल की प्राप्ति होती है।

\+ + +

एक विद्वान ब्राह्मण ने एक बार राजा के पास जाकर कहा—'महाराज ! मैंने धर्मग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया है। मैं आपको भगवद्गीता पढ़ाना

चाहता हूँ।' राजा विद्वान् से अधिक चतुर था। उसने मन में विचारा कि 'जिस मनुष्य ने भगवद्गीता का अध्ययन किया होगा वह और भी अधिक आत्म-चिन्तन करेगा, राजाओं के दरबार की प्रतिष्ठा और धन के पीछे थोड़े ही पड़ा रहेगा।' ऐसा विचार कर राजा ने ब्राह्मण से कहा कि 'महाराज ! आपने स्वयं गीता का अध्ययन नहीं किया है। मैं आपको शिक्षक बनाने का वचन देता हूँ, लेकिन आप अभी जाकर गीता का अध्ययन और अच्छी तरह कीजिए।' ब्राह्मण चला गया, लेकिन वह बराबर यही सोचता गया कि 'देखो तो राजा कितना बड़ा मूर्ख है, वह कहता है कि तुमने गीता का पूर्ण अध्ययन नहीं किया और मैं कई वर्षों से उसी का बराबर अध्ययन कर रहा हूँ।' उसने जाकर एक बार गीता को फिर पढ़ा और राजा के सामने उपस्थित हुआ। राजा ने पुनः वही बात दोहरायी और उसे विदा कर दिया। ब्राह्मण को इससे दुःख तो बहुत हुआ, लेकिन उसने मन में विचारा कि राजा के इस प्रकार कहने का कुछ-न-कुछ मतलब अवश्य है। वह चुपके-से घर चला गया और अपने को कोठरी में बन्द करके गीता का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने लगा। धीरे-धीरे गीता के गूढ़ अर्थ का प्रकाश उसकी बुद्धि पर पड़ने लगा और उसको स्पष्ट मालूम होने लगा कि सम्पत्ति, मान, द्रव्य, कीर्ति के लिए दरबार में या किसी दूसरी जगह दौड़ना व्यर्थ है। उस दिन से वह दिन-रात एक चित्त से ईश्वर की आराधना करने लगा और राजा के पास नहीं गया। कुछ वर्षों के बाद राजा को ब्राह्मण का स्मरण आया और उसकी खोज करता हुआ वह स्वयं उसके घर गया। ब्राह्मण के दिव्य तेज और प्रेम को देखकर राजा उसके चरणों पर गिर पड़ा और बोला—'महाराज ! अब आपने गीता के असली तत्त्व को समझा है, यदि मुझे अब अपना चेला बनाना चाहें तो प्रसन्नता से बना सकते हैं।'

\+ \+ \+

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में विवाद छिड़ गया कि उनमें कौन बड़ा है ? अन्त में दोनों स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने कहा—बड़ा सरल है। तुम में से जो दूसरे को बड़ा समझे, वही बड़ा है।

अब तो विवाद का स्वरूप ही बदल गया। दोनों एक-दूसरे को 'तू बड़ा, तू बड़ा' कहने लगे।

×

पुण्य - तिथि के अवसर पर

लोकमान्य तिलक के प्रेरक संस्मरण

कापी मेरे दिमाग में है !

एक बार मास्टर जी इतिहास पढ़ा रहे थे। लड़के अपनी कापियों में लिख रहे थे। तिलक नहीं लिख रहे थे, सिर्फ सुन रहे थे। मास्टर जी बोले—तिलक, तुम्हारी कापी कहाँ है ?

तिलक ने जवाब दिया—कापी मेरे दिमाग में है। मास्टर जी को यह बात बुरी लगी। वे बोले—इसका क्या मतलब हुआ ? तुम कापी पर लिखते क्यों नहीं हो ?

तिलक ने कहा—मुझे कापी की जरूरत नहीं है, लड़के कापी पर लिखते हैं और मैं अपने दिमाग में लिखता हूँ।

उन्हें विश्वास न हुआ और वे बोले—अच्छा, यह बात है। तो फिर बताओ, मैंने आज क्या पढ़ाया है ?

तिलक ने पूरा पाठ ठीक-ठीक सुना दिया। मास्टर जी अचरज में पड़ गये।

विद्यार्थी तिलक

लोकमान्य तिलक तब बम्बई के एलफिंस्टन कालेज में पढ़ते थे। एक बार गणित के अँगरेज प्राध्यापक ने बहुत कठिन प्रश्न-पत्र बनाया। पचास छात्रों ने शून्य पाया। कुछ छात्रों को सात-सात अङ्क मिले। आगाशे नामक एक विद्यार्थी को सत्तर अङ्क मिले और तिलक को पचपन। इस पर अध्यापक ने तिलक से कहा—तुम्हारे अङ्क आगाशे से कम आये हैं, यह ठीक नहीं है।

उसके बाद प्राध्यापक ने कहा—कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की पत्रिका के प्रस्तुत अङ्क में गणित के बहुत कठिन प्रश्न आये हैं। मैं उन्हें हल करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। तुम भी पत्रिका अपने घर ले जाओ और उन्हें हल करो।

अगले ही दिन तिलक पत्रिका के सब प्रश्नों को हल करके ले आये। प्राध्यापक बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—मुझे खयाल ही नहीं था कि गणित में तुम इतने प्रवीण हो।

निर्भीक तिलक

सन् १९०७ में सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन उपद्रवों के कारण नहीं हो पाया। गरम दल और नरम दल का विरोध उग्रतम हो गया। अधिवेशन भंग हो जाने के बाद भी लोकमान्य तिलक

कुछ दिन सूरत में रहे। बाद में वे बम्बई जाने वाले थे।

इसी बीच सूरत के एक प्रसिद्ध सज्जन ने लोकमान्य से कहा—मुझे विदित हुआ है कि सूरत के कुछ उपद्रवी स्टेशन जाते समय आप पर आक्रमण करेंगे। आप कहें तो मैं आपकी सुरक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध करूँ।

लोकमान्य ने कहा—अपने देशबन्धुओं के हाथ से मुझ पर प्रहार हो यह मुझे पसन्द है, किन्तु सरकारी सिपाहियों की सहायता लेना मुझे जरा भी पसन्द नहीं।

पत्रकार लोकमान्य

पूना में प्लेग ने भयङ्कर रूप धारण कर रखा था। लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक का बड़ा पुत्र भी प्लेग से पीड़ित हो गया। पुत्र की दशा चिन्ताजनक होते हुए भी तिलक 'केसरी' के अङ्क का अधूरा काम पूरा करने के लिए कार्यालय जाने को तैयार हो गये।

किसी ने उन्हें टोका—लड़का मौत से जूझ रहा है। अगर आज आप कार्यालय न जायें तो क्या काम न चलेगा?

गम्भीर एवं संयत स्वर में तिलक ने उत्तर दिया—सारा महाराष्ट्र 'केसरी' की प्रतीक्षा में बैठा है, तब न जाकर भला कैसे चलेगा?

इतना ही नहीं, उनका पुत्र उस भयङ्कर प्लेग की बलि हो गया। लोकमान्य तिलक पुत्र की अन्त्येष्टि करके तुरन्त ही 'केसरी' के लिए लेख लिखने बैठ गये। लोगों के आश्चर्य करने पर उन्होंने कहा—'जब होलिका जलती है, तब सब लोग उस पर एक-एक कण्डा चढ़ाते हैं। मैंने भी प्लेग रूपी होलिका पर एक कण्डा मात्र चढ़ा दिया है। इसमें शोक करने की कोई बात नहीं है।' 'गीता-रहस्य' के प्रणेता निष्काम कर्मयोगी लोकमान्य तिलक के लिए यह धैर्य उपयुक्त ही था। +++

साधु-जीवन का महत्व

"...साधु-जीवन से ही आत्म-शान्ति की प्राप्ति सम्भव है। यही इहलोक और परलोक—दोनों का साधन है। साधु-जीवन का अर्थ है—सत्य और अहिंसामय जीवन, सम्पूर्ण जीवन। भोग कभी कर्म नहीं बन सकता, धर्म की जड़ तो त्याग में ही है।"

—महात्मा गांधी

भौतिकवाद और अध्यात्मवाद

• श्री रा० कु० गुप्त

[२]

मानव-समस्याओं को समझने के लिए मानव के उद्विकास को जानना आवश्यक है। परन्तु मानव का उद्विकास अन्य प्राणियों के उद्विकास से सम्बन्धित है। अतः पहले अन्य प्राणियों के उद्विकास पर विचार करना अधिक तर्क-पूर्ण होगा।

संसार में जीवन का प्रारम्भ छोटे-छोटे जीवाणुओं से हुआ। इन सूक्ष्म जीवाणुओं से रीढ़-विहीन जीवों, मछलियों, उभयचरों, रेंगने वाले जीवों, फिर स्तन-धारी जीवों के विकास में करोड़ों वर्षों का समय लगा। विकास की अन्तिम कड़ी मानव था। मानव को प्रारम्भिक जीव के विकास-क्रम का फल समझा जा सकता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम किसी भी जीव को मानव का पुरखा मान लें। आम तौर पर कही जाने वाली बात कि 'मानव का विकास वनमानुष से हुआ है' पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इसका प्रमाण किसी भी वैज्ञानिक के पास नहीं है क्योंकि विकास-क्रम की सारी कड़ियाँ नहीं मिल पायी हैं और उनका मिलना भी असम्भव-सा प्रतीत होता है। विकास-क्रम के बारे में जितना भी ज्ञान प्राप्त हो सका है वह पृथ्वी में आकस्मिक उथल-पुथल के कारण दब गये जीवों की पथरायी हड्डियों के कारण प्राप्त हुआ है जो खानों में खुदाई के समय मिल पायी हैं। पर इतने बड़े संसार की तुलना में इन खानों द्वारा खोदा हुआ स्थान नहीं के बराबर है।

परन्तु जितने भी तथ्य प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर उद्विकास का एक ढाँचा तैयार किया गया है। इस ढाँचे से यह पता लगता है कि विकास-क्रम में अनेकों तरह के जीव पैदा हुए और मर गये। उनमें से कुछ-ही जीवित रहे जो आज हमारे संसार में हैं। किसी भी व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उठना साधारण-सी बात है कि वे अनेकों तरह के जीव क्यों मर गये? वे जीवित क्यों नहीं रह सके जबकि उनके कुछ साथी अभी भी इस संसार में करोड़ों

सुयश है राम-कृष्ण का शेष !

—: श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री :—

अधर्मेण एधते तावत्, ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति, समूलस्तु विनश्यति ॥

—मनु० ४।१७४

प्रथम होता पापी-विस्तार, भोगता भोग, रचाता रास ।
वह लेता शत्रु-दल को जीत, समूल होता फिर उसका नाश ॥
जगत का यही सनातन-नियम, सत्य का होता बेड़ा पार ।
मगर पापी की भरकर नाव, डूब जाती है बीच मँझार ॥
कहाँ है रावण का परिवार ? कहाँ है बली ? कहाँ है कंस ।
सुयश है राम-कृष्ण का शेष, कलंकित हो गये पापी-बंस ॥

× × ×

दुष्ट-भाव के विप्र

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च, नियमाश्चैव तपांसि च ।
न विप्र दुष्टभावस्य, सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

—मनु० २।९७

करें तप, त्याग, यज्ञ, व्रत, नियम, फिरें या वेद-शास्त्र गाते ।
जो होते दुष्ट-भाव के विप्र, नहीं वे सिद्धि को पाते ॥

वर्तन का सिद्धान्त)। जैसे ही उनका प्रादुर्भाव होता है उनकी परीक्षा की जाती है (अनुकूलता का सिद्धान्त)। यदि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं तब तो नयी जाति जीवित रहती है अन्यथा समाप्त हो जाती है (प्राकृतिक चुनाव का सिद्धान्त)। इन तीनों क्रियाओं का यह संयुक्त रूप ही जीव-जगत की विद्यमान अवस्था का वर्णन करता है । ×××

वर्षों के बाद भी जीवित हैं ? ला मार्क के अनुसार वे जीव अपने को अपने वातावरण के अनुकूल न बना सके, इसलिए नष्ट हो गये।

डार्विन के अनुसार यह प्रश्न प्राकृतिक चुनाव का है, जहाँ वही जीवित रह सकता है जो योग्यतम है। पर इन सिद्धान्तों से बहुत-से विवादास्पद प्रश्न खड़े हो जाते हैं। प्रकृति ही जब सारे जीवों को जन्म देने वाली है तो उनमें से कुछ ही क्यों अपने को उसके अनुकूल बना सके, अन्य क्यों नहीं ? यदि संसार में योग्यतम जीवों को ही रहना था तो प्रकृति ने अयोग्य जीवों का निर्माण ही क्यों किया ? यदि एक जाति में आकस्मिक परिवर्तन के अनुसार नयी जाति पैदा हो गयी तो फिर वह लोप कैसे हो गयी ? ये सब सिद्धान्त इन प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ हैं।

इन सब प्रश्नों का उत्तर हमें मिल जाता है यदि हम यह मानकर चलें कि उद्विकास के प्रारम्भ से ही प्रकृति के पास एक अन्तिम उद्देश्य था। प्रकृति एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जीवों का निर्माण करती रही। साध्य निश्चित था पर साधन नहीं। उद्विकास के पूरे क्रम में प्रकृति यह प्रयत्न करती रही कि वह उस तरह के अंगों की रचना करे जिनसे प्राणी को अपने वातावरण में अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता मिले। मनुष्य इस उद्देश्य का अन्तिम परिणाम है। प्रकृति के लिए यह एक बहुत बड़ा प्रयोग था। इस बात को दृष्टिगत रखते हुए प्रकृति एक नयी विशेषता देकर बहुत-सी जातियों को जन्म देती और लाखों वर्षों तक उन्हें जीवित रहने देती और उनमें से सर्वश्रेष्ठ जाति को चुन लेती। शेष जातियाँ धीरे-धीरे समाप्त हो जातीं।

विकास-क्रम की तुलना हम एक नदी से कर सकते हैं जो एक पहाड़ पर से निकलती है। प्रारम्भ में यह विभिन्न दिशाओं से निकलती हुई छोटी-छोटी धाराओं के रूप में होती है। इन धाराओं के सामने अनेक प्रकार की बाधाएँ आती हैं। कुछ आपस में मिलकर बड़ी धारा में परिवर्तित हो जाती हैं; कुछ चट्टानों आदि में खो जाती हैं; कुछ झीलों में परिवर्तित हो जाती और कुछ झरनों के रूप में बहने लग जाती हैं। परन्तु एक बात अवश्य है कि वे सब एक ही शक्ति द्वारा प्रेरित होकर पहाड़ की तलहटी की ओर बढ़ने का यत्न करती हैं।

इसी प्रकार विकास-क्रम भी एक धारा के समान है जो प्रारम्भ से ही एक ही दिशा की ओर उत्तरोत्तर प्रगति करता रहा। राह में तरह-तरह की परीक्षाएँ होती रहीं जिनमें कभी सफलता मिली और कभी असफलता। यदि कोई प्रयत्न गलत रहा और उससे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई तो वह धारा से अलग जा गिरा और कालान्तर में समाप्त हो गया। इस तरह यह बात गौण हो जाती है कि एक जाति के प्राणी जीवित रहे या मर गये। मुख्य बात यह थी कि कौन-सी जाति के प्राणी उद्विकास की शृंखला की कड़ी बने।

उद्विकास एक भौगोलिक घटना है जो अनुकूल बनने (ला मार्क), 'प्राकृतिक चुनाव' (डार्विन) और 'अकस्मात् परिवर्तन' (नौडिन-डिरीज) इन तीनों प्रारम्भिक क्रियाओं का संयुक्त फल है। इन क्रियाओं से हम प्राणियों के गुणों का सम्बन्ध उन अर्थों में नहीं जोड़ सकते जिनमें इन सिद्धान्तों को बनाने वाले जोड़ते थे। उद्विकास के उद्देश्य की प्राप्ति बड़े भिन्न-भिन्न तरीकों के अनुसार हुई है जो भौत-रासायनिक और साधारण जैविक नियमों (Physico-chemical and biological laws) के अनुरूप हैं। उद्विकास के रास्ते में इन क्रियाओं का स्थान एक मन्दिर बनाने वाले राज से अधिक नहीं है। वह राज एक बहुत जटिल तत्व का प्रतिनिधित्व करता है जो भौत-रासायनिक, जैविक, मानवीय, व सामाजिक नियमों के अनुसार काम करता है। मन्दिर के साथ उसका सम्बन्ध उसकी कन्नी से है और भवन-निर्माणकर्ता की दृष्टि से तो वह केवल कन्नी ही है। मन्दिर के निर्माता की दृष्टि में भवन-निर्माणकर्ता भी साधन है। यही बात उद्विकास की इन क्रियाओं पर भी लागू होती है। हर एक क्रिया उद्विकास में सहयोग देती है लेकिन जिन नियमों के अनुसार ये होती हैं वे उद्विकास के नियमों से भिन्न हैं।

उपयोगिता अनुकूल बनने की कसौटी है और स्वतन्त्रता उद्विकास की कसौटी है। हर एक जीव भौत-रासायनिक व जैविक दृष्टि से अपने को अनुकूल बनाने का यत्न करता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति उसे अनुकूल बनने के लिए बाध्य करती है। परन्तु हर एक जीव आवश्यक रूप से उद्विकसित नहीं होता। हजारों में से कुछ ही जीव उद्विकसित हो पाते हैं (अकस्मात् परि-

→

सुयश है राम-कृष्ण का शेष !

—: श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री :—

अधर्मेण एधते तावत्, ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति, समूलस्तु विनश्यति ॥

—मनु० ४।१७४

प्रथम होता पापी-विस्तार, भोगता भोग, रचाता रास ।
वह लेता शत्रु-दल को जीत, समूल होता फिर उसका नाश ॥
जगत का यही सनातन-नियम, सत्य का होता बेड़ा पार ।
मगर पापी की भरकर नाव, डूब जाती है बीच मँझार ॥
कहाँ है रावण का परिवार ? कहाँ है बली ? कहाँ है कंस ।
सुयश है राम-कृष्ण का शेष, कलंकित हो गये पापी-बंस ॥

× × ×

दुष्ट-भाव के विप्र

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च, नियमाश्चैव तपांसि च ।
न विप्र दुष्टभावस्य, सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

—मनु० २।९७

करें तप, त्याग, यज्ञ, व्रत, नियम, फिरें या वेद-शास्त्र गाते ।
जो होते दुष्ट-भाव के विप्र, नहीं वे सिद्धि को पाते ॥

वर्तन का सिद्धान्त)। जैसे ही उनका प्रादुर्भाव होता है उनकी परीक्षा की जाती है (अनुकूलता का सिद्धान्त)। यदि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं तब तो नयी जाति जीवित रहती है अन्यथा समाप्त हो जाती है (प्राकृतिक चुनाव का सिद्धान्त)। इन तीनों क्रियाओं का यह संयुक्त रूप ही जीव-जगत की विद्यमान अवस्था का वर्णन करता है। ×××

मैं पी-एच० डी०

मैं पी-एच० डी०
मैंने 'थीसिस' लिखकर छोड़ा
दौड़ रहा है काव्य - जगत में
मेरे अश्वमेध का घोड़ा
एक हजार छः सौ नौ पृष्ठ
भाव सरल भाषा अति क्लिष्ट
जगह - जगह फुट - नोट दिये हैं
बड़े - बड़े कवि, महाकवि,
आलोचक, रोचक, प्रत्यालोचक,
बाँके भट, उद्भट, सम्पादक
'कोट' किये हैं
पोथे के पहले पन्ने पर
अपना पूरा चित्र दिया है
अध्यक्षों के नाम समर्पित
कर यह पोथा
मैंने काम पवित्र किया है
इस पोथे को जो पढ़ता है
सिर धुनता है
क्या गुनता है ?
क्या चुनता है ?
अपना - अपना कोण
दृष्टि है अपनी - अपनी
तुलसिदास ने ठीक कहा है
'जाकी रही भावना जैसी'
पाठक की ..... !

ठीक भावना नहीं समझ में
क्या आयेगा ?
लेखक का क्या दोष ?
लिखेगा, छपवायेगा
अच्छा बुरा नहीं है कुछ भी
आँखों का है दोष
ऊँच - नीच का पाठक भागी
लेखक है निर्दोष
मुझे कौन-सा लिखने का धन्धा
करना है ?
मेरे दादा - परदादा थे सट्टे के
सौदागर, लाखों जोड़ गये हैं
मेरे पूज्य पिता के खातिर छोड़ गये हैं
मैं ही हूँ सन्तान पिताजी की इकलौती
आयी एक हिलोर,
सीप से बिछुड़ा मोती
पैसा होगा पास, नाम खुद हो जायेगा
लक्ष्मी का वरदान
दाग सब धो जायेगा
कौन देखता काम ?
नाम की महिमा सारी
नकली हल्दी - हींग बेचकर
नाम कमा लेता पंसारी।

—श्री ओमप्रकाश आदित्य

विचारोत्तेजक कहानी

दोषी कौन ?

—श्री देशराजसिंह भाटी एम. ए., साहित्यरत्न

[प्रस्तुत कहानी में लेखक ने समाज के एक अत्यन्त कुत्सित अङ्ग की ओर इङ्गित किया है, जिसके उदाहरण एक नहीं, अनेक मिल सकते हैं। इस सन्दर्भ में पाठकों एवं लेखकों से अपने विचार एवं लेख भेजने का विशेष आग्रह है।

—सम्पादक]

'तू अब तक कहाँ थी, रजनी ?' माँ ने तीखे स्वर में पूछा।

रजनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह बिना रुके ही अपने कमरे में चली गयी और पुस्तकों को मेज पर पटक कर कटे वृक्ष की भाँति पलंग पर गिर पड़ी। माँ का तीखा स्वर उसे स्पष्ट सुनायी दे रहा था—

'तू ने घर की लाज और इज्जत सभी को ताक में रख दिया। आवारा की तरह न जाने दिन भर कहाँ-कहाँ घूमती है। तुझे कालेज भेजा था पढ़ने के लिए, घर और खानदान की इज्जत उछालने के लिए नहीं। खबरदार, अगर अब घर से बाहर कदम रखा तो अपने हाथों ही तेरा गला घोट दूँगी।'

रजनी अधिक न सुन सकी। तुरन्त बाहर आकर बोली—'बस' माँ! चुप रहो। बहुत कुछ कह लिया। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।'

माँ का पारा और भी चढ़ गया। गरजी—

'अच्छा क्या नहीं होगा ? यही तो कि तू अपने किसी यार के साथ भाग जायेगी। जो तुझे करना है, करके ही रहेगी···।'

'माँ !' रजनी चीखी।

माँ की वाणी और भी अधिक गालियों से भर गयी। रजनी को लगा कि यदि वह कुछ देर और खड़ी रही तो मूर्च्छित होकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर जायेगी। किसी भाँति स्वयं को सम्भाल

कर वह अन्दर कमरे में गयी। पलंग पर गिर पड़ी। और फूट-फूटकर रोने लगी। माँ का तीखा भाषण अब भी चल रहा था।

+ + +

रजनी अपने माँ-बाप की इकलौती पुत्री थी। उसके पिता कब इस दुनिया से सिधारे, इसका रजनी को कुछ पता नहीं। उसने जब होश सम्भाला तो जाना कि उसकी माँ ही उसका एकमात्र सहारा है। माँ भी उसे जी-जान से चाहती थी और छाया की भाँति सदा उसके साथ लगी रहती थी। घर में धन की कमी नहीं थी। माँ का असीम प्यार और अतुल सम्पत्ति का सुख पाकर रजनी रात-दिन बढ़ने लगी। उसका बचपन जैसे असमय ही उसे छोड़ने लगा और यौवन असमय ही उसके सुगठित शरीर में लावण्यता के मनोहर रंग भरने लगा। माँ की साध थी रजनी का विवाह देखने की। एक दिन उसने अपने देवर को बुलाकर कहा—

'माधव! रजनी के लिए कोई योग्य लड़का तुरन्त ढूँढ लो।'

'लेकिन अभी तो रजनी बच्ची ही है, भाभी! अभी से इतनी जल्दी ही क्या?' माधव ने उत्तर दिया।

'माधव! जिन्दगी तो पानी का एक बुलबुला है। न जाने किस क्षण डूब जाये। चाहती हूँ, रजनी के हाथ भी अपने सामने ही पीले कर दूँ। न जाने कल क्या होगा?'

'भाभी! तुम तो सदा वेसिर-पैर की बातें करती हो।'

'माधव, मैं जो कहती हूँ, वह करो।'

भाभी का आदेश माधव न टाल सका। लड़का तलाश किया। सभी परिवार वालों को वर बहुत पसन्द आया। बड़ी धूमधाम से रजनी का विवाह कर दिया गया। तब रजनी की उम्र केवल १० वर्ष की थी।

रजनी का विवाह करके माँ ने एक ठण्डी साँस ली, जैसे उसके सिर से बहुत भारी बोझ उतर गया हो। लेकिन, भाग्य की लिपि को कौन पढ़ सकता है? विवाह से ठीक छः महीने पश्चात् ही रजनी विधवा हो गयी। माँ का हृदय टूक-टूक हो गया। उसके हृदय से एक मर्मभेदी आह निकल कर रह गयी। नियति की निष्ठुरता के सामने वह इससे अधिक और कर भी क्या सकती थी? रजनी का मासूम और लम्बा जीवन उसके सामने था। पुनर्विवाह की बात तो वह सोच भी नहीं सकती थी

क्योंकि इससे उसके कुल की मर्यादा भंग होती थी। उसने रजनी को फिर से कालेज में भेज दिया, ताकि उसका मन लगा रहे और वह अपने जीवन के इस भयंकर अभाव को महसूस न करे।

ज्यों-ज्यों रजनी के जीवन में यौवन आता गया, उसका सौन्दर्य निखरता गया, उसके भाव रंगीन बनते गये। और जब वह पूर्ण युवती हुई तो उसे अपने जीवन की स्थिति का पता चला—वह विधवा थी, जिसे घुल-घुलकर, जल-जलकर जीना था, जीवन के दिन पूरे करने थे। उसके मन को गहरा आघात लगा, पर वह उसे अपने हृदय में ही छिपाये रही, प्रकट करने का कोई लाभ भी तो नहीं था।

\+ + +

दिनेश कालेज के संगीत-अध्यापक थे। तबीयत रंगीन थी। ठाट-बाट से रहते थे। विवाह को वे जीवन और भावों का बन्धन मानते थे, इसलिए आजन्म कुँवारा रहने का संकल्प कर चुके थे। युवक भी थे और सुन्दर भी। उनकी वाणी में माधुर्य था। जब वे कोई राग अलापते तो रजनी भाव-विभोर हो उठती, अपने तन-मन की सुधि भूल जाती, पर इससे आगे वह कुछ सोच भी नहीं सकती थी, क्योंकि वह विधवा थी। एक दिन अवसर पाकर दिनेश ने रजनी से कहा—

'रजनी देवी!'

'जी!'

'मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।'

'पूछिए।'

'तुम सारे दिन इतनी उदास क्यों रहती हो?'

'नहीं तो।'

'तुम झूठ बोल रही हो, रजनी! मैंने एक बार नहीं, सैकड़ों बार देखा है, जब सारी लड़कियाँ खिलखिलाकर हँसती हैं तो तुम्हारे चेहरे की उदासी और भी गहरी हो जाती है, जैसे तुम्हें हँसने से चिढ़ है।'

रजनी के हृदय में एक तूफान उठा, भावों का झंझावात चला। उसने चाहा कि वह अपने अध्यापक को स्पष्ट बता दे कि वह विधवा है जिसे समाज में हँस-कर जीने का नहीं, बल्कि घुल-घुलकर मरने का ही अधिकार है। उसकी बात होठों तक आयी। उसने अपना मुँह जोर से भींच लिया। मन की बात मन में उठकर ही मन में विलीन हो गयी। अपनी व्यथा को दबाती हुई बोली—

'ऐसी बात नहीं है।' और उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये। वह उठकर चली गयी।

दिनेश से सहानुभूति पाकर रजनी का मन उसकी ओर बढ़ चला। वह रात-दिन उसके विषय में सोचने लगी। लाज और मर्यादा का बन्धन धीरे-धीरे शिथिल होने लगा। दिनेश के जाल में वह भोली चिड़िया की भाँति उलझती ही गयी। एक दिन उसने रजनी के भावों को और अधिक उभारने के लिए उससे कहा—

'रजनी! तुम जीना नहीं जानतीं।'

'कैसे?'

'घुल-घुलकर जीना कोई जीना नहीं। यह तो मौत से भी बुरा है। इस संसार में वही प्राणी जीवित रह सकता है जो समाज के बन्धनों को ठुकराने की शक्ति रखता हो।'

'मैं कुछ समझी नहीं, आप क्या कहना चाहते हैं।'

'रजनी! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम मुझसे कितना प्यार करती हो। तुम सोचती हो कि जब तक तुम शब्दों से अपने भावों को प्रकट न करोगी, तब तक मैं तुम्हारी बातों को न समझ सकूँगा। यह तुम्हारी भूल है। प्रेम की कहानी शब्दों से नहीं, आहों से, आँखों से, चेहरे पर उगते-मिटते, मचलते-थिरकते भावों से कही जाती है। मैं प्रेम की कहानी को पढ़ना अच्छी तरह जानता हूँ।'

लाज से रजनी के गोरे कपोल लाल हो गये। दिनेश ने आज पहली बार उसके सामने प्रेम का खुलकर प्रस्ताव रखा था। वह इस प्रस्ताव को सुनकर धन्य हो गयी। अपने मन के आह्लाद को छिपाती हुई बोली—

'मैं लड़की हूँ और फिर विधवा। मेरे भावों की, मेरे अरमानों की इस दुनिया में कोई कीमत नहीं है।' कहती हुई वह सिसक पड़ी।

दिनेश ने उसे अपने बाहुपाश में बाँध लिया। बोला—

'रजनी, पत्थर तराशने वाले के लिए तो रास्ते में पड़ा हुआ वह पत्थर भी बहुत कीमती होता है, जिसको सब ठोकर मारकर चलते हों। और फिर तुम तो रत्न हो। रत्न को स्वयं अपनी कीमत का पता नहीं होता। उसका मूल्यांकन तो कोई बुद्धिमान जौहरी ही कर सकता है।'

जीवन में पहली बार बाहुपाश में बँधकर रजनी को इसके आनन्द का अनुभव हुआ। उसे लगा जैसे आठों

करने का, किसी को उपदेश देने का कोई हक नहीं है।'

माँ ने एक बार रजनी की ओर देखा। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। वह आवेश के कारण थर-थर काँप रही थी। माँ का क्रोध तुरन्त सिसकियों में बदल गया। सिसकती हुई बोली—

'हाँ, बेटी! मैं हत्यारिन हूँ। मैंने अपने अरमानों के लिए तुम्हारे अरमानों का गला घोटा है।' कहती हुई वह अन्दर चली गयी।

तब रजनी को अनुभव हुआ, जैसे उसने अपने मार्ग की सबसे बड़ी बाधा को पार कर लिया हो।

\+ + +

दिन पर दिन बीतते गये। दिनेश और रजनी का प्रेम बढ़ता गया। एक दिन दिनेश ने रजनी से पूछा—

'रजनी, क्या तुम बता सकती हो कि प्रेम क्या है?'

'एक आकर्षण।'

'नहीं।'

'और?'

'मैं प्रेम को मन की भूख मानता हूँ जिसकी तृप्ति वासना से होती है। जो लोग प्रेम को त्याग, आदर्श मानते हैं, वे गलती पर हैं। उनका मत ठीक वैसा ही है जैसे समुद्र की गहराई को ही समुद्र मान लेना। गहराई समुद्र का एक अङ्ग है, पर समुद्र नहीं। समुद्र है उसकी थिरकती और मचलती लहरें। इसी प्रकार प्रेम में अपनाये गये त्याग और आदर्श इसके एक अङ्ग हैं। अङ्गों को अङ्गी मान लेना मूर्खता है। वास्तविकता तो यह है कि प्रेम मन की एक भूख है। इसकी तृप्ति तक पहुंचने के लिए मनुष्य ने त्याग और आदर्श के ढोंग बनाये हुए हैं। इनसे यह भूख कभी शान्त नहीं होती। जिस प्रकार पेट की भूख के लिए अन्न आवश्यक है, उसी प्रकार इस भूख के लिए शारीरिक सम्बन्ध। केवल आदर्शों पर टिका प्रेम एक धोखा है जो जान-बूझकर खाया जाता है।'

कहते-कहते दिनेश की आँखों में वासना की लाली झलक आयी। रजनी ने मुसकराकर कहा—

'मैं आपकी इस परिभाषा पर विचार करूँगी।'

\+ + +

जब माँ को पता चला कि रजनी गर्भवती है तो वह पागल-सी हो उठी। उसकी समझ में न आया कि वह क्या

करे। वह अपने कुल की मर्यादा के लिए रजनी का गला घोट सकती थी, पर इससे भी तो समस्या का हल नहीं होता था। बदनामी बन की आग की तरह फैलती है, इसे वह भली प्रकार जानती थी। वह रात-दिन गुमसुम बनी रहती। उसका शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होता गया, जैसे कोई अज्ञात घुन अपनी पूरी शक्ति के साथ उसे खाये जा रहा हो। जब भी रजनी उसके सामने आती, वह अपना मुँह फेर लेती। जिस बेटी के साथ वह छाया की तरह लगी रहती थी, उसी का मुँह देखना भी उसे बुरा लगता था! रजनी इस अपमान-जनक जीवन से ऊब गयी। एक रात को उठकर वह दिनेश के पास पहुँची। उसे देखते ही दिनेश ने पूछा—

'आज इस समय यहाँ कैसे ?'

मैं तुम्हें एक रहस्य बताने आयी हूँ।'

'रहस्य !' दिनेश का माथा ठनका।

'हाँ, रहस्य जिसे मैं आज तक तुमसे छिपाती रही। मैं गर्भवती हूँ।'

यह सुनते ही दिनेश के हाथों के तोते उड़ गये। रजनी को गोद में भरकर बोला—

'ऐसा मजाक न करो, रजनी! ठीक-ठीक बताओ, क्या बात है।'

'मैं ठीक कह रही हूँ।' रजनी ने उसी गम्भीरता से कहा।

दिनेश ने रजनी को छोड़ दिया। कुर्सी पर बैठकर दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लिया। कुछ देर तक चुप रहकर बोला—

'फिर मैं क्या कर सकता हूँ ?'

'हम यहाँ से कहीं दूर चले चलें, जहाँ हमें कोई न जानता हो।'

'लेकिन यह कैसे हो सकता है? मैं इज्जतदार आदमी हूँ। लोग जब इस बात को सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?'

'मजाक न करो, दिनेश! अब इस बात के सिवाय कोई चारा भी तो नहीं है।'

'मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। सच कह रहा हूँ। यह काम मुझसे नहीं होगा।'

'तो मेरा क्या होगा ?' रजनी ने आँखों में आँसू भरकर पूछा।

'मैं क्या बताऊँ ?' दिनेश ने रुखाई से उत्तर दिया।

'दिनेश! तुमने सैकड़ों बार कहा था कि मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारा साथ निभाऊँगा, तुम्हारी खुशी के लिए आकाश के तारे तोड़ लाऊँगा, समुद्र की गहरी गोद से रत्नों को छीन लाऊँगा। मैं तुम्हें कभी धोखा नहीं दूँगा, अपने

और तुम्हारे प्रेम को बदनाम नहीं होने दूँगा। और आज तुम ऐसी बातें कर रहे हो ?'

'रजनी, कुछ बातें ऐसी होती हैं जो प्रचलित तो बहुत होती हैं, पर जिनका कुछ अर्थ नहीं होता। दुनिया का हर प्रेमी अपनी प्रेमिका से ऐसी ही बातें करता है। यह समझ लो कि प्रेम की दुनिया में ये वाक्य जरूरी बन गये हैं, पर इनका कोई अर्थ नहीं है। आज तक किसी भी प्रेमी ने अपनी प्रेमिका के लिए न तो आकाश के तारे तोड़े हैं और न समुद्र से रत्नों को निकाला है।'

'तुम धोखेबाज हो।' रजनी तमतमाकर बोली।

'प्रेम में यह कोई नयी बात नहीं। वास्तव में प्रेम एक धोखा है, इसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों धोखेबाज होते हैं, एक-दूसरे को धोखा देते हैं और दोनों ही जान-बूझकर धोखा खाते हैं।'

•

'दिनेश, लगता है, सीधी उँगली से घी निकलने वाला नहीं है।'

'रजनी, सीधी तरह यहाँ से निकल जाओ। इस समय एक शरीफ आदमी के घर आते हुए तुम्हें शर्म नहीं आयी जाती हो या धक्के देकर बाहर करूँ ?'

रजनी को लगा जैसे तीनों लोकों का भार उसके दुर्बल कन्धों पर आ पड़ा हो। जीवन में पहली बार उसे नारी के अबलापन का अनुभव हुआ। उसने लपक कर दिनेश के पैर पकड़ लिये—

'दिनेश, मुझ पर न सही, अपने इस होने वाले बच्चे पर तो दया करो ?' वह सुबक-सुबक कर रोने लगी। दिनेश ने उसी रुखाई से कहा—

'निकलती हो, या धक्के देकर निकालूँ ?'

रजनी की रही-सही आशा का क्षीण धागा भी टूट गया। खड़ी हुई और बोली—

'दिनेश, आज मैं अपनी इज्जत के लिए आदमी के पैरों पर गिरी हूँ। एक दिन ऐसा होगा कि आदमी मेरे पैरों पर गिरेंगे।' कहती हुई रजनी हवा की तरह उसके घर से बाहर हो गयी। दिनेश ने मन ही मन मुसकराकर कहा—

'दिल के बहलाने को गालिब यह खयाल अच्छा है।'

कुछ दूर चलने के बाद रजनी के पैर ठिठक गये। वह खड़ी हो गयी। चारों ओर रात का सन्नाटा था। अँधेरा इतना गहरा था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। इस विशाल संसार में न तो उसकी कोई राह थी और न अपना

ही कोई नजर आता था। कुछ देर तक वह खड़ी रही, किसी गम्भीर समस्या को सुलझाती रही। फिर उसके कदम अपने-आप बढ़ने लगे। वह कहाँ जा रही थी, इसका उसे कोई पता न था। वह तो एक के बाद एक कदम धरती की छाती पर धरती चली जा रही थी।

जब पूरब में लाली फूटी तो वह रुकी। उसका शरीर चूर-चूर हो गया था। अब एक भी कदम उठाने की शक्ति उसमें नहीं थी। थोड़ी देर रुककर वह फिर चली। कुछ ही देर बाद वह एक नदी के किनारे पर खड़ी थी। लहरें एक दूसरी का आलिंगन करती हुई उठ-गिर रही थीं। वह कुछ क्षण चुपचाप उन लहरों को देखती रही। फिर स्वयं ही बुदबुदायी—अब इसके सिवाय मेरी और कोई राह नहीं है। नदी की गम्भीर गोद के अलावा इस स्वार्थी संसार में मुझे और कोई आश्रय देने वाला नहीं। यह सोचकर उसने अपने शरीर के भार को संतुलित किया, ठीक उसी प्रकार जैसे उड़ने से पहले पक्षी अपने पंखों को तौलता है। तभी उसके कानों में किसी का स्वर पड़ा—

'ठहरो, देवि!'

रजनी का संतुलन बिगड़ गया। पीछे की ओर मुड़कर देखा—एक संन्यासी उसी की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। पास आकर बोले—

'आत्महत्या? यह तो सबसे बड़ा पाप है, देवि!'

रजनी की आँखें भर आयीं। उसके मन ने कहा—आदमी और आदमी के बीच कितना अन्तर है। एक आदमी ने जीवन से उठाकर मृत्यु की गोद में धकेल दिया और दूसरे आदमी ने मृत्यु की गोद से खींचकर जीवन दिया।

'यह घृणित कर्म किसलिए देवि!' संन्यासी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

'जो प्राणी मृत्यु का वरण करने के लिए तैयार हो, उससे शुभ-अशुभ कर्मों के विषय में पूछना व्यर्थ है, बाबा!' रजनी एक ही साँस में कह गयी।

संन्यासी को रजनी के जीवन की मर्मव्यथा का अनुमान लगाने में देर न लगी। उसने कहा—

'जीवन को इतना सस्ता न समझो, बेटी! भगवान की इस धरोहर को यों ही नष्ट करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। चलो, मेरी कुटी पर चलो।'

संन्यासी के अथाह वात्सल्य के सामने रजनी अनचाहे ही झुक गयी। वह उनकी कुटी पर चली गयी। कुटी का वातावरण और संन्यासी का वात्सल्य

पाकर रजनी अपने जीवन का बीता भाग प्रायः भूल-सा गयी। वह अपना सारा दिन संन्यासी की सेवा में और कुटी को सँवारने में बिताती। इस प्रकार छः मास बीत गये। और एक रात रजनी ने एक पुत्र को जन्म दिया, पर वह भी जन्म लेते ही सदा के लिए अपनी माँ का साथ छोड़कर चला गया। जिसके लिए वह अब तक जीवित रही, वह भी उसका साथ न दे सका। रजनी का दबा आक्रोश फिर जाग उठा। उसे वे शब्द याद आये जो उसने चलते समय दिनेश से कहे थे—'आज मैं अपनी इज्जत के लिए आदमी के पैरों पर गिरी हूँ। एक दिन ऐसा होगा कि आदमी मेरे पैरों पर गिरेंगे।'

जब प्रातःकाल संन्यासी जगे तो उन्होंने देखा कि रजनी का बिस्तर खाली पड़ा हुआ है।

\+ + +

आज रजनी नगर की सबसे मुख्य वेश्या है। सारे नगर में उसके रूप की चर्चा है। धर्म के ठेकेदार और सम्मानित कहे जाने वाले व्यक्ति भी रात के अँधेरे में उसके घर आते हैं और उसकी एक हल्की मुसकान पाकर ही अपने को धन्य समझते हैं। आज वह समाज में सिर ऊँचा करके चलती है। लोग उसे देखने के लिए उमड़ पड़ते हैं। आज वह नहीं, आदमी उसके सामने झुकता है। इससे उसके मन में सन्तोष तो होता है, पर एक प्रकार की टीस भी होती है। उसने आदमी को अपने सामने झुका तो लिया पर इसकी उसे कितनी कीमत देनी पड़ी, यह सोचकर स्वयं उसका कलेजा धड़कने लगता है। उसका जन्म एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था और अन्त उस घर में होगा जो समाज के कलंक कहे जाते हैं। कितना पतन हुआ है उसका! उसके इस पतन में दोष किसका है? रजनी अनेक बार स्वयं इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयत्न कर चुकी है। कभी वह सोचती है कि सारा दोष समाज का है। समाज ने ही उसके सामने वे परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं कि उसे वेश्या बनना पड़ा, वरना वह भी एक सुलक्षणा गृहिणी की भाँति सम्मान से अपना जीवन बिता सकती थी। कभी सोचती है कि स्वय उसी का दोष है। यदि वह अपने पथ से भ्रष्ट न होती तो समाज उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता था। रजनी जितना अधिक इस पहलू को सोचती है, उतना ही उलझ जाती है।

आप ही बतायें कि दोषी कौन है?

●●

हाई कोर्ट के जज थाने में !

• श्री विष्णुदत्त

घटना लाहौर की है। राजकुमारी अमृतकौर के भाई जस्टिस दिलीपसिंह पंजाब हाई कोर्ट के जज थे। उनकी काबलियत का सिक्का सारे पंजाब पर था। उन्होंने बड़े-बड़े कानूनी मसलों को हल करने में कमाल किया था।

एक बार उनकी कोठी में रात के वक्त चोरी हो गयी और चोर काफी माल ले गये। प्रातःकाल जगे तो चोरी का पता चला। उन्होंने अपने चपरासी को पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाने भेजा मगर उस वक्त थाने के सभी सिपाही सोये पड़े थे। चपरासी ने आवाज दी तो उसे चुनी-चुनी गालियाँ सुनाकर वापस कर दिया।

जिस वक्त चपरासी वापस बंगले पर पहुँचा तो जस्टिस दिलीपसिंह अपनी नाइट ड्रेस में ही बंगले के सामने वाली सड़क पर टहल रहे थे। उन्होंने चपरासी से रिपोर्ट के बारे में पूछा तो उसने आपबीती कह सुनायी। जस्टिस महोदय उसी वक्त चपरासी को साथ लेकर थाने में पहुँचे तो देखा कि पहरे के सिपाही से लेकर सभी अमला खर्राटे भर रहा है। आहट पाकर ड्यूटी पर तैनात सिपाही ने चिल्लाकर पूछा—"अबे कौन है तू जो सुबह-सुबह झख मारने आ पहुँचा ?"

"हुजूर घर में चोरी हो गयी है, उसकी रिपोर्ट दर्ज कराने आया हूँ", जस्टिस दिलीपसिंह ने जवाब दिया। उसने चार गालियाँ देकर जस्टिस महोदय का स्वागत किया। इतने में मुहर्रिर की आँखें भी खुल गयीं। नींद में खलल पड़ने की वजह से वह भी झुँझला उठा और उसने भी गर्मागर्म गालियाँ सुनायीं—"बड़े साहब बने फिरते हैं साले ! शराब पीकर बेहोश हो जाते हैं और अब रिपोर्ट दर्ज करवाने आये हैं मानो किसी नवाब के बेटे हों। इनके बाप के नौकर जो हैं कि जब जी चाहा थाने में घुस आये।" जस्टिस दिलीपसिंह ने बड़ी शान्ति से काम लिया और यह पता ही नहीं चलने दिया कि मैं पंजाब हाई कोर्ट का जज दिलीपसिंह हूँ। मजबूर होकर मुहर्रिर को रिपोर्ट लिखने का रोजनामचा उठाना पड़ा ! मुहर्रिर ने जस्टिस साहब से कहा—"बोल बे नवाबजादे, क्या कहना है।" जब दिलीपसिंह स्टूल पर बैठने लगे तो

मुहर्रिर बोला—खड़े रहकर कहो, क्या कहना है। बड़ा आया कोई अफसर का बेटा जो थाने में आकर रोब गाँठने चला है।"

तभी थानेदार भी आ गया और उसने भी आते ही 'थानेदारी ढंग' की चार गालियों द्वारा स्वागत किया। थानेदार पास ही कुर्सी पर बैठकर सिगरेट के कश लगाने लगा।

"किस साहब के नौकर हो? कहाँ से आये हो?"—मुहर्रिर ने पूछा।

"हुजूर मेरी चोरी हो गयी है!"

"तुम्हारा नाम?"

"दिलीपसिंह"

"बाप का नाम?"

"....."

"क्या काम करते हो?"

"जी, मैं नौकर हूँ।"

"अबे नौकर तो है, मगर कहाँ?"

"हाई कोर्ट में?"

"हाई कोर्ट में?"

"जी हाँ।"

"क्या काम करते हो?"

"नौकरी।"

"...दिमाग चाट गया। अबे, चपरासी है, क्लर्क है, मुन्शी है या झाड़ू लगाने वाला है, कुछ है भी वहाँ?"

"जी, मैं हाई कोर्ट में जज हूँ।"

जस्टिस दिलीपसिंह का यह कहना था कि थानेदार चौंककर उठा। उसने जब गौर से देखा तो होशहवास खो बैठा। मुहर्रिर भी उठा और दोनों ने अटेंशन होकर सैल्यूट किया, मगर दोनों के चेहरों पर एक रंग आता और एक जाता। जबानें लड़खड़ाने लगीं और काटो तो खून नहीं। जस्टिस दिलीपसिंह ने डी० आई० जी० को फोन किया तो वे और लगभग सभी पुलिस अधिकारी बात की बात में थाने में हाजिर हो गये।

पता नहीं अपराधियों को क्या सजा मिली, मगर थानेदार सहित चार पाँच पुलिस सिपाहियों को मुअत्तिल कर दिया गया। दूसरे दिन यह घटना समाचारपत्रों द्वारा पंजाब के कोने-कोने में एक दिलचस्पी का कारण बन गयी और बहुत दिनों तक इसकी चर्चा होती रही।

मनुष्य को चाहिए कि वह न तो दूसरों के दोष देखे और न यह देखे कि दूसरे क्या करते हैं और क्या नहीं करते। उसे अपने कृत - अकृत - कर्मों को देखना चाहिए।

—धम्मपद

पति - पत्नी - संवाद

पति—क्या बता सकती हो कि वशीकरण किसे कहते हैं ?

पत्नी—पुरुष को अपने वश में करके उससे जो चाहे करवा लेना—वशीकरण कहलाता है।

पति—उँह, यह वशीकरण हुआ ? यह तो शादी हुई !

\+ + +

पति—मैं हफ्तों से तुमसे एक सवाल पूछना चाहता रहा हूँ।

पत्नी—और मैं महीनों से उसका जवाब लिये बैठी हूँ !

\+ + +

पति—देखो, मकान-मालिक कब से दरवाजा खटखटा रहा है। उससे कह दो कि मैं घर में नहीं हूँ।

पत्नी—लेकिन आप तो कभी झूठ नहीं बोलते।

पति—इसीलिए तो तुम्हें भेज रहा हूँ !

\+ + +

इठलाइयाँ

देखकर आना मियाँ का बोलीं बेगम—ऐ मियाँ !
किसलिए आये यहाँ ? जाओ जहन्नुम हो जहाँ।
इसपे बोले चिढ़ के बेगम से मियाँ कुछ इस तरह—
और क्या समझा है बेगम ! और मैं आया कहाँ !

\+ + +

बोले बेगम से मियाँ—अब कट गयी घर भर की नाक,
मैंने देखा तेरे भाई को तवायफ के यहाँ।
इसपे बोलीं चिढ़ के बेगम—यह तो बतलाओ मियाँ !
किसलिए जाना हुआ था आपका उसके यहाँ ?

• श्री 'डण्ठल'

चीजों को भी काम में लाकर उनकी शक्ल - सूरत बदल कर काफी आमदनी की जाती है।

आप भी यदि अपने फालतू समय का उपयोग करके अपने घर में प्रति-दिन बेकार होने वाली चीजों से अन्य उपयोगी वस्तुएँ तैयार करने में दिलचस्पी लें तो इससे सीधे तौर से तीन लाभ तो होंगे ही—(१) आपकी आमदनी बढ़ेगी। (२) देश - वासियों को बढ़िया चीज मिलेगी। (३) देश की पूँजी देश में ही रहेगी। आइए, अब आपको कुछ ऐसे भेद बताएँ जिनसे आप थोड़े ही दिनों में मालामाल हो सकते हैं।

आम के मौसम में लोग खट्टे-मीठे सभी प्रकार के आमों का उपयोग करके उनकी गुठलियाँ फेंक देते हैं। आप इन गुठलियों को जमा करके सुखा लें। फिर इन्हें तोड़कर इनके भीतर की गिरी ले लें और पाताल - यन्त्र से उसका तेल निकाल लें। यह तेल बालों को काला और चमकदार रखता है। अगर इसका बराबर प्रयोग किया जाये तो जीवन भर खिजाब लगाने की जरूरत नहीं पड़ती।

आम की गुठलियों की गिरी को पाउडर की सूरत में बहुत बारीक पीसकर और उसके पैकेट बनाकर बेचने से भी लाभ उठाया जा सकता है। यह पाउडर बलगमी खाँसी में बहुत गुणकारी है। कपड़ा रँगने वालों के लिए भी यह पाउडर बहुत उपयोगी है। अगर इस पाउडर को पानी में पका कर और उसमें कपड़े को भिगोकर रँगा जाये तो रंग बहुत बढ़िया और तेज चढ़ेगा। कपड़ा रँगने वाले आपके पक्के ग्राहक बन सकते हैं।

ठण्डे मीठे खरबूजे खाइए और उनके छिलके जमा करके खूब सुखा लीजिए। अब इन सूखे छिलकों को बहुत बारीक पीस कर पाउडर बना लीजिए। किसी प्रकार की दाल या सब्जी वगैरा न गलती हो तो इस पाउडर में से चुटकी भर देगची में डाल दीजिए। दाल या सब्जी तुरन्त गल जायेगी। इसी पाउडर को आटे में मिला-कर गूँध लेने से फौरन ही खमीर तैयार हो जायेगा। इसके छोटे - छोटे पैकेट बनाकर बेचिए। लोग बहुत खरीदेंगे।

'सर्वसखा' में विज्ञापन देना अपनी उन्नति के द्वार खोलना है।

रद्दी और बेकार चीजों से पैसा कमाइए !

[आजकल बेरोजगारी की समस्या सब तरफ मुँह बाये खड़ी है। दिन - रात मेहनत करने पर भी अपने देश के अधिकतर लोग भरपेट रोटी नहीं जुटा पाते। महँगाई दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती जा रही है जिसके कारण हर व्यक्ति परेशान नजर आता है। जरूरत है कि देशवासी अपने फालतू समय को काम में लावें। वे अपने फुरसत के क्षणों में दैनिक प्रयोग की अनेक वस्तुएँ तैयार करके पैसा बचा भी सकते हैं और कमा भी सकते हैं। इसी विचार से इस स्तम्भ में मामूली पूँजी और थोड़ी मेहनत से चल निकलने वाले उद्योग-धन्धों के बारे में जानकारी देने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है, पाठक लाभ उठावेंगे और अपने अनुभवों व सुझावों से सूचित करते रहेंगे जिससे दूसरे जरूरतमन्द भाई भी जानकारी प्राप्तकर लाभ उठा सकें।

— सम्पादक]

दुनिया में कोई चीज बेकार नहीं है। यूरोप और अमरीका के बड़े - बड़े नगरों में बेकार चीजों को इकट्ठा किया जाता है और उन्हें ऐसे कारखानों में भेज दिया जाता है जहाँ उन सब चीजों की छाँट की जाती है। छाँटने के बाद जो चीजें बिकने योग्य निकलती हैं उन्हें बेच दिया जाता है और बाकी को बायलर में डाल कर जला दिया जाता है।

पाँच लाख की आबादी वाले एक अमरीकी नगर से एक लाख डालर मूल्य के कागज, टीन के डिब्बे, टूटे-फटे कपड़े, बोतलें, टूटे हुए शीशे आदि जमा किये जाते हैं। कोलम्बिया के एक कारखाने में ७५ हजार टन ऐसी चीजें भेजी जाती हैं जिनसे २½ लाख डालर मूल्य की चिकनाई निकाली जाती है।

बाल्टीमोर के एक कारखाने में टूटे - फूटे टीन के डिब्बों को गलाकर अनेक चीजें तैयार की जाती हैं जिनसे वाशिंगटन नगर निगम को २५ हजार डालर वार्षिक आय होती है।

इसी प्रकार दूसरी किस्म की बेकार

चीजों को भी काम में लाकर उनकी शक्ल-सूरत बदल कर काफी आमदनी की जाती है।

आप भी यदि अपने फालतू समय का उपयोग करके अपने घर में प्रति-दिन बेकार होने वाली चीजों से अन्य उपयोगी वस्तुएँ तैयार करने में दिलचस्पी लें तो इससे सीधे तौर से तीन लाभ तो होंगे ही—(१) आपकी आमदनी बढ़ेगी। (२) देश-वासियों को बढ़िया चीज मिलेगी। (३) देश की पूँजी देश में ही रहेगी। आइए, अब आपको कुछ ऐसे भेद बताएँ जिनसे आप थोड़े ही दिनों में मालामाल हो सकते हैं।

आम के मौसम में लोग खट्टे-मीठे सभी प्रकार के आमों का उपयोग करके उनकी गुठलियाँ फेंक देते हैं। आप इन गुठलियों को जमा करके सुखा लें। फिर इन्हें तोड़कर इनके भीतर की गिरी ले लें और पाताल-यन्त्र से उसका तेल निकाल लें। यह तेल बालों को काला और चमकदार रखता है। अगर इसका बराबर प्रयोग किया जाये तो जीवन भर खिजाब लगाने की जरूरत नहीं पड़ती।

आम की गुठलियों की गिरी को पाउडर की सूरत में बहुत बारीक पीसकर और उसके पैकेट बनाकर बेचने से भी लाभ उठाया जा सकता है। यह पाउडर बलगमी खाँसी में बहुत गुणकारी है। कपड़ा रँगने वालों के लिए भी यह पाउडर बहुत उपयोगी है। अगर इस पाउडर को पानी में पका कर और उसमें कपड़े को भिगोकर रँगा जाये तो रंग बहुत बढ़िया और तेज चढ़ेगा। कपड़ा रँगने वाले आपके पक्के ग्राहक बन सकते हैं।

ठण्डे मीठे खरबूजे खाइए और उनके छिलके जमा करके खूब सुखा लीजिए। अब इन सूखे छिलकों को बहुत बारीक पीस कर पाउडर बना लीजिए। किसी प्रकार की दाल या सब्जी वगैरा न गलती हो तो इस पाउडर में से चुटकी भर देगची में डाल दीजिए। दाल या सब्जी तुरन्त गल जायेगी। इसी पाउडर को आटे में मिलाकर गूँध लेने से फौरन ही खमीर तैयार हो जायेगा। इसके छोटे-छोटे पैकेट बनाकर बेचिए। लोग बहुत खरीदेंगे।

'सर्वसखा' में विज्ञापन देना अपनी उन्नति के द्वार खोलना है।

—: हँसी की फुहार :—

उपयोगी प्रस्ताव

एक कस्बे में बच्चों के पुराने स्कूल के जीर्णोद्धार के लिए काफी आवाजें उठीं। काफी कोशिशों के बाद इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक मीटिंग बुलायी गयी। खूब गर्मा-गर्म बहसों के बाद प्रस्ताव पास हुआ—पुराने स्कूल की हालत नाजुक हो जाने के कारण नयी इमारत बनाना आवश्यक हो गया है। अतः एक नयी इमारत जल्दी से जल्दी बनायी जाये। लेकिन बचत की दृष्टि से यही उचित है कि नयी इमारत पुराने स्कूल के मलवे में बनायी जाये। साथ ही बच्चों की पढ़ाई में रुकावट न पड़ने देने के लिए यह आवश्यक है कि जब तक नयी इमारत बन कर तैयार हो कक्षाएँ पुरानी इमारत में ही लगती रहें।

लड़के की उम्र

ग्राहक जितना कपड़ा लाया था दर्जी उसमें सूट बनाने को तैयार न हुआ। ग्राहक उस दूकान से निकलकर पास की दूकान में गया। दूसरा दूकानदार उस कपड़े में सूट बनाने को तैयार हो गया। सूट बनकर तैयार हुआ तो बिलकुल 'फिट' था। तभी दर्जी का तीन साल का लड़का उसी कपड़े का सूट पहने निकला। ग्राहक की शंका को समझ कर दर्जी बोला—"जी, क्षमा करें, आपके सूट में से जो कपड़ा बचा उससे मैंने अपने बच्चे का सूट तैयार कर लिया।... ...और वैसे इतना बचा हुआ कपड़ा आपके किसी काम भी तो न आता।"

ग्राहक सूट लेकर पुराने दर्जी के यहाँ पहुँचा और शिकायत भरे स्वर में बोला—"तुम तो मेरा सूट बनाने को ही मना करते थे। तुम्हारे पास के दर्जी ने मेरा सूट तो बनाया ही, थोड़ा कपड़ा बचाकर अपने लड़के का सूट भी तैयार कर लिया।"

"ठीक ही तो है" वह दर्जी बोला—"उसके लड़के की उम्र तीन साल है और मेरा लड़का पूरे बीस साल का है।"

पिता की सीख

एक आदमी अपने लड़के को वकील बनाना चाहता था, इसलिए वह उसे बचपन से ही झूठ बोलना सिखा रहा था। एक बार उसने कहा—बेटा, अगर तुम कुछ भी सोचे बिना फौरन ही कोई अच्छा झूठ बोलो, तो मैं तुम्हें एक रुपया दूँगा।

लड़के ने तुरन्त कहा—एक रुपया! अभी तो आप दो रुपये कह रहे थे।

●●

इन गलतियों से बचिए !

ooo

पेशाब, पाखाना, छींक, आँसू, डकार, कै, भूख, प्यास, साँस, नींद, और पाखाने के रास्ते से निकलने वाली हवा को रोकने से बहुत भयानक रोग पैदा हो जाते हैं जिनमें से कई तो कभी-कभी आदमी की जान तक ले लेते हैं। इसलिए आप कभी भूल कर भी इनको न रोका कीजिए। अब सुनिए कि इनके रोकने से कैसे-कैसे रोग पैदा हो जाते हैं।

—पेशाब को रोकने से पेशाब की नाली, पेडू और मूत्राशय में दर्द होता है। पेशाब रुक-रुक कर थोड़ा-थोड़ा और कष्ट से होता है। सिर में दर्द होता है। पेट में उफारा हो जाता है और शरीर सीधा नहीं होता।

—पाखाना रोकने से पेट में गड़गड़ाहट और दर्द होता है। डकारें आती हैं या मुँह से गन्दी हवा निकलती है। पेट फूल जाता है और आमाशय में दर्द होता है। पाखाना साफ नहीं होता और गुदा में कतरने जैसी पीड़ा होती है।

—छींक को रोकने से गरदन अकड़ जाती है। सिर में दर्द चलने लगता है। इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं और लकवे से आधा मुँह टेढ़ा हो जाता है।

—हर्ष या शोक से पैदा हुए आँसुओं को बलपूर्वक रोकने से जुकाम हो जाता है। सिर भारी हो जाता है। सिर में दर्द होने लगता है। पेनिस और आँखों के कई रोग पैदा हो जाते हैं।

—डकार रोकने से कई वातरोग पैदा हो जाते हैं—गले और जीभ का भारी-सा मालूम होना, गले में घर्र-घर्र की आवाज होना। एकदम नोचने जैसा दर्द होना, समझ में न आये, ऐसी बात कहना।

—आ रही कै को रोकने से शरीर में खुजली, मुँह पर छाई, सूजन, पीलापन, ज्वर, कोढ़, जी मिचलाना, रक्त-विकार आदि रोग हो जाते हैं।

—भूख रोकने से अँगड़ाई आने लगती है। बैठे-बैठे आँखें मिचने लगती हैं। शरीर टूटता है। परि-

श्रम किये बिना ही थकान महसूस होती है। शरीर दुर्बल हो जाता है। आँखों की ज्योति कम हो जाती है। पाचन-शक्ति घट जाती है।

—प्यास को रोकने से मुँह और गला सूखता है। कानों की सुनने की शक्ति कम होती है। कलेजे में दर्द होता है। शरीर में पानी बहने वाली नालियाँ सूख जाती हैं जिससे कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

—कठिन परिश्रम से पैदा हुए साँस या दम को रोकने से दिल का घबराना, दिल का उचाट होना, पेट में हवा का गोला पैदा हो जाना इत्यादि शिकायतें पैदा हो जाती हैं।

—आती हुई नींद को रोकने से जँभाई आती है। शरीर टूटता है। सिर में दर्द होता है। बैठे-बैठे आँखें बन्द होने लगती हैं। नेत्रों में कई दोष पैदा हो जाते हैं। दिमाग चकराने लगता है।

—पाखाने के रास्ते से निकलने वाली गन्दी हवा को शर्म या हिचकिचाहट के कारण रोकने से पेशाब-पाखाना रुककर कब्ज हो जाता है। पेट फूल जाता है। अकारण थकान मालूम होती है। पेट में वायु से दर्द होता है।

वर्षा में स्वास्थ्य

आजकल वर्षा ऋतु है। इसमें हमें प्रातःकाल शौचादि के बाद हाथ-मुँह धोकर खुले स्थान में जाना चाहिए। इसके लिए कोई पार्क, मैदान या अपने ही मकान की ऊपरी छत ठीक रहती है। वहाँ जाकर अपने शरीर पर अच्छी तरह तैल की मालिश करनी चाहिए और यथाशक्ति व्यायाम अवश्य करना चाहिए।

वर्षा ऋतु में वायु की प्रधानता रहती है। अतः शरीर के अंगों में प्रायः दर्द की शिकायत हो जाती है। तैल की मालिश से वायु के प्रकोप का भय नहीं रहता और व्यायाम से शरीर में दृढ़ता आती है। भोजन में भी ऐसी चीजें लेनी चाहिए जो चिकनी हों और जिनमें शुद्ध घी भी उचित मात्रा में हो। इस प्रकार शरीर के भीतर घी से और बाहर तैल-मर्दन से स्नेहन होता रहता है। तैल की मालिश तथा व्यायाम के बाद थकावट पूरी तरह दूर होने पर स्नान करें। ××

पाठकों की समस्याएँ

—तीन साल से सिर दर्द से परेशान हूँ। —नन्दकिशोर, मोदी नगर

पिप्पलामूल चूर्ण चार रत्ती में भुनी फिटकरी दो रत्ती मिलाकर शहद के साथ दिन में दो बार सेवन करें।

—गर्मियाँ शुरू होते ही नाक से खून आने लगता है। अवस्था २० साल है। —दीनानाथ, चन्दौसी

प्रवाल पिष्टी दो रत्ती गुलकन्द एक तोला में मिलाकर प्रतिदिन दो बार सेवन करते रहें।

—बहुत दिनों से गठिया रोग से पीड़ित हूँ। —कमलनयन, बहरायच

महायोमराज गुग्गुल की दो-दो गोली रास्नादि काढ़े के साथ प्रातः-सायं सेवन करना लाभकारी होगा।

—छाती और कमर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकल आयी हैं।

—मदनगोपाल, जालन्धर

नीम के पत्तों का रस निकालकर शरबत बनाकर प्रतिदिन सवेरे पियें।

—सारे शरीर में खुजलाहट से परेशान हूँ। —रमाशंकर, भोपाल

तेल नारियल में कपूर मिलाकर शरीर पर हर रोज मालिश करें।

—चेहरे पर पवित्रता और भोलापन झलकने का उपाय बताएँ।

—राजेन्द्रमोहन, चण्डीगढ़

मन और मन के भाव साफ और पवित्र हों तो उनका प्रभाव चेहरे पर भी झलकने लगता है।

—क्या गृहस्थ-धर्म के साथ लेखन-कार्य भी चल सकता है?

—सरोजबाला, बरेली

अवश्य चल सकता है, पारिवारिक जनों का सहयोग आवश्यक है।

—रेडियो एनाउन्सर बनने के लिए क्या योग्यता होनी चाहिए?

—राजमती, रोहतक

बी० ए० पास और रेडियो के अनुकूल आवाज।

—शरीर जल जाने से भद्दे धब्बे पड़ गये हैं। कैसे दूर हो सकते हैं?

—चन्द्रकान्ता, आगरा

स्किन ग्राफ या प्लास्टिक सर्जरी से।

कुछ आधुनिक परिभाषाएँ

नेता कौन है ?

जो भाषण दे सके
वर्तमान को गला - सड़ा बताकर
उज्ज्वल भविष्य के सपने दिखाकर
लोगों को भड़का सके
आन्दोलन करा सके
पार्टी बना सके
वायदे पर वायदा करता रहे
पर कभी पूरा न कर सके !
अपनी ही जेब से
पैसे खर्च करके
निमन्त्रण - पत्र छपवाकर
बड़े - बड़े पोस्टर लगवाकर
खुद अपना ही
मनमाना अभिनन्दन करा सके !

•

कवि कौन है ?

जो सुस्वर में गा सके
भटक कर झूम कर
जनता को रिझा सके
कवि - सम्मेलन में जम सके
गीत चाहे कैसा हो
जिसे अपने पैसों और
लोगों के मनोरंजन से काम !

मन्त्री कौन है ?

जो उद्घाटन कर सके
भाषण दे सके
कुर्सी के मोहवश
सबको अपना बनाये रहे
किसी का विरोध न करे
अपने दल वालों की
हाँ में हाँ मिलाता रहे !
कोई कुछ कहे
मौन साधे रहे
किसी से कुछ न कहे
निन्दा और स्तुति को
एक जैसा समझ कर
सब की सहे !

•

अध्यापक कौन है ?

जिसे और काम न मिले
एम. ए., बी. ए. करके भी
जो चपरासी के वेतन
जितना थोड़ा वेतन ले सके
कक्षा में विशेष न पढ़ाकर
ट्यूशन के लिए उकसाता हो
छात्र सुधरें या बिगड़ें
जिसे अपने रुटीन से काम !

• श्री मित्रेश

गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनायें !

• उपराष्ट्रपति डा० जाकिरहुसैन

○○○

पिछले दिनों बम्बई में महिला स्नातक संघ के स्वर्ण-जयन्ती समारोह का उद्घाटन करते हुए उपराष्ट्रपति डा० जाकिरहुसैन ने कहा कि प्रत्येक भारतीय महिला के दो कर्त्तव्य है—प्रथम यह कि वह गृह-जीवन को सुखमय बनाये तथा दूसरा यह कि नयी पीढ़ी को इस तरह से तैयार करे कि इस बड़े घर—भारत को सुखी व समृद्ध बना सके। पढ़-लिखकर आप कोई भी व्यवसाय अपनाएँ मगर मेरी इतनी प्रार्थना है कि घर को न भूलें। घर ही राष्ट्रीय जीवन की नींव है। घर ही संस्कृति के मन्दिर हैं। घर में ही मनुष्य में वह गुण पनपते हैं जो हमारे सुखद जीवन के मुख्य आधार हैं।

आज की जटिल जीवन-व्यवस्था में हम सबके लिए यह समझ लेना जरूरी है कि जीवन को बाँटा नहीं जा सकता, उसे मिलजुलकर साझेदारी के स्तर पर जिया जा सकता है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि राष्ट्रों को भी आपसी हितों का साधन मिलजुलकर करना होगा, आस्थाओं और प्रवृत्तियों को समानता के स्तर पर निभाना होगा। यदा-कदा मतभेद उत्पन्न हो जाने से विवाद खड़े हो सकते हैं, युद्ध छिड़ सकते हैं, किन्तु अन्ततः स्थायी शान्ति सम्मिलित जीवन के रूप में ही सामने आती है। जीवन की, जीवन के सुखों, विश्वासों, आस्थाओं और हितों की साझेदारी का अर्थ स्त्री-पुरुषों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता का हनन नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह स्वतन्त्र स्वस्थ सामाजिक जीवन की अनिवार्य शर्त है।

उपराष्ट्रपति ने राष्ट्र की मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा—बावजूद इसके कि हमारे संवेदनशील और धैर्यहीन साथी यह महसूस करते हैं कि राष्ट्रीय जीवन में उद्देश्यहीनता की घातक व्याधि व्याप्त है। परिवार की संगठनात्मक एकता भंग हो चुकी है, कम-से-कम नगरों में तो यही हाल है।

युवकों में अधिकार माँगने की प्रवृत्ति है, तदनुरूप कर्तव्यपालन का उत्साह नहीं है। शिक्षा की व्यवस्था है, शिक्षार्थी हैं, किन्तु ज्ञान के प्रति आदर और पवित्रता की भावना नहीं है। सरकार की आलोचना की जाती है, लेकिन सबकी भलाई के लिए, सार्वजनिक हित साधन के लिए सरकार को सहयोग देने की इच्छा कोई नहीं प्रकट करता। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह है कि जो कुछ हमारे भीतर से उदित होना चाहिए, उसकी अपेक्षा हम विदेशों से करते हैं।

आज की निरन्तर जटिल होती हुई जीवनचर्या में शिक्षित नारी की भूमिका का उल्लेख करते हुए डाक्टर जाकिर-हुसैन ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि आप सब (शिक्षित महिलाएँ) यह संकल्प लें कि आपके प्रभाव क्षेत्र में किसी बच्चे से खेलने और हँसने का अधिकार नहीं छीना जायेगा, किसी बच्चे की बुद्धि का विकास नहीं रुकने पायेगा और किसी भी बच्चे को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक स्नेह और लाड़-प्यार से वंचित नहीं रहने दिया जायेगा।"

महिलाओं से

'सर्वसखा' राष्ट्रीय चेतना का उद्बोधक, मनोरंजनपूर्ण पारिवारिक मासिक - पत्र है। इसके 'नारी - लोक' स्तम्भ में भारतीय परिवारों की वर्तमान समस्याओं से सम्बन्धित लेखों और कहानियों का संयोजन होता है, पारिवारिक जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिए पर्याप्त दिशा-निर्देश रहता है। हर परिवार में इस पत्रिका का रहना परिवार के उज्ज्वल भविष्य का चिह्न है।

महिला-लेखिकाओं से निवेदन है कि वे इस स्तम्भ को अधिकाधिक रोचक बनाने के लिए अपनी रचनाएँ भेजें। यह उनका निजी स्तम्भ है।

—सम्पादक

'सर्वसखा' २०३४ बाजार सीताराम, दिल्ली-६

अगस्त १९६६ के प्रमुख व्रत - त्योहार

●●●

१ अगस्त	सोमवार	लोकमान्य तिलक - पुण्यतिथि
७ अगस्त	रविवार	रवीन्द्र - पुण्यतिथि
९ अगस्त	मंगलवार	'भारत छोड़ो' आन्दोलन - दिवस
१२ अगस्त	शुक्रवार	पुरुषोत्तमा एकादशी - व्रत,
१४ अगस्त	रविवार	प्रदोष - व्रत
१५ अगस्त	सोमवार	स्वतन्त्रता - दिवस, अरविन्द जयन्ती, रामकृष्ण परमहंस - पुण्यतिथि महादेव भाई - पुण्यतिथि
१६ अगस्त	मंगलवार	पुरुषोत्तम समाप्ति, सिंह संक्रान्ति
१९ अगस्त	शुक्रवार	कजली तीज
२० अगस्त	शनिवार	नाग पंचमी
२२ अगस्त	सोमवार	तुलसी - जयन्ती
२३ अगस्त	मंगलवार	शिवकोटि - दर्शन
२५ अगस्त	बृहस्पतिवार	कल्कि - जयन्ती
२६ अगस्त	शुक्रवार	पुत्रदा एकादशी - व्रत
२८ अगस्त	रविवार	प्रदोष - व्रत
३० अगस्त	मंगलवार	रक्षाबन्धन, श्रावणी उपाकर्म

● नीबू का रस निकाल कर किसी काम में ले आने के बाद भी बचे हुए छिलके नहाने के लिए उबटन का काम देते हैं। इन खाली छिलकों को हाथों पर, गरदन पर और सारे शरीर पर खूब रगड़िए। इससे खूब निखार आता है और त्वचा कोमल हो जाती है। साथ ही पानी की कुदरती खुश्की भी दूर हो जाती है।

●●●

सर्वोत्तम जल !

सन्त ने पूछा—सर्वोत्तम जल कौन - सा है ?

एक शिष्य ने उत्तर दिया—गंगा - जल

सन्त ने फिर पूछा—क्या उससे भी बढ़कर कोई जल है ?

दूसरे शिष्य ने उत्तर दिया—भूमि पर गिरने से पहले का वर्षा - जल।

सन्त ने फिर वही प्रश्न किया।

तीसरे शिष्य ने कहा—प्रभात में तरुपत्र पर चमकने वाला ओस - जल।

सन्त के पुनः प्रश्न करने पर चौथे शिष्य ने कहा—बिछुड़े हुए पुत्र से मिलने पर माता की आँखों से निकलने वाला अश्रु - जल !

सन्त को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने पाँचवे शिष्य से पूछा।

उसने उत्तर दिया—आजीवन धोखा - धड़ी करके संचित धन को देखकर मरणासन्न धनी के नेत्रों से निकलने वाला अनुताप - जल।

अन्त में सन्त ने छठे शिष्य से वही प्रश्न किया।

वह बोला—सारा दिन परिश्रम करके अपने आश्रित प्रियजनों के लिए आहार संग्रह करने वाले का श्रम - जल (पसीना)।

सन्त ने इस उत्तर से परम सन्तुष्ट होकर उसे साधुवाद दिया।

●●

छुआछूत : एक अभिशाप

"छुआछूत एक ऐसा साँप है जिसके हजार मुख हैं और जिसके प्रत्येक मुख में जहरीले दाँत दिखायी पड़ते हैं। यह इतना विस्तृत है कि इसकी परिभाषा नहीं की जा सकती। यह इतना जबरदस्त है कि इसे अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए मनु या प्राचीन स्मृतिकारों की जरूरत नहीं पड़ती।"

—मोहनदास करमचन्द गांधी

अगस्त मास का ऐतिहासिक महत्व

इतिहास पर भली प्रकार दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि विश्व भर में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ इसी मास में घटीं। उनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :

३ अगस्त १४९२—कोलम्बस ने यूरोप से भारत आने का समुद्री मार्ग खोजने के लिए अपनी यात्रा आरम्भ की थी।

३० अगस्त १६५९—मुगल सम्राट औरंगजेब की आज्ञा से दारा शिकोह को जो उसका बड़ा भाई था, मृत्यु-दण्ड दिया गया था।

अगस्त १८५६—ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से भारत का शासन लिया था।

७ अगस्त १९०६—हमारे राष्ट्र का सबसे पहला झण्डा कलकत्ता में लहराया गया था।

अगस्त १९१४—प्रथम महायुद्ध छिड़ा था।

१७ अगस्त १९२०—डाक-तार विभाग ने हवाई डाक का सिलसिला शुरू किया था।

३० अगस्त १९३९—द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ था।

८-९ अगस्त १९४२—बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने अपना प्रसिद्ध प्रस्ताव 'अँगरेजो, भारत छोड़ो' पास किया था।

९ अगस्त १९४५—जापान के प्रसिद्ध नगर नागासाकी पर बम गिराया गया था।

१५ अगस्त १९४५—द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ था।

१५ अगस्त १९४७—अँगरेजी राज्य के चंगुल से छूट कर भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की थी।

अगस्त १९५६—मिस्र द्वारा स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण घोषित किया गया था।

मुसाफिर—भइया ! यह सड़क किधर जाती है ?
मुन्ना—अरे ! जाती तो कहीं नहीं, सदा यहीं पड़ी रहती है।

१५ अगस्त

—:: रमेशचन्द्र विजय ::—

लाये थे तुम भारत भू पर, स्वतन्त्रता १५ अगस्त ।
किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, ऐ मेरे १५ अगस्त ।।

ऋण से मुक्त नहीं हो सकते ।
केवल धन्यवाद ही देकर ।।
लक्ष्य प्राप्ति कर न सकेंगे ।
केवल भारत की जय कहकर ।।
यदि चाहते लक्ष्य-प्राप्ति ।
चलना नहीं, दौड़ना होगा ।।
आने वाले कल के लिए ।
समय पर चिह्न छोड़ना होगा ।।
पाकर के यह नव-प्रकाश हम ।
आगे ही बढ़ते जायेंगे ।।
केवल आशा नहीं, अपितु ।
विश्वास हमें बढ़ते जायेंगे ।।
आयेंगे फिर वे स्वर्णिम दिन ।
बाट जोहती जिसकी सृष्टि ।।
सारी धरती स्वर्ग बनेगी ।
होगी विश्व-प्रेम की वृष्टि ।।

फिर कैसे हम भूल सकेंगे, युग शिल्पी १५ अगस्त ।
लाये थे तुम भारत भू पर, स्वतन्त्रता १५ अगस्त ।।

मेरे चहेते !

सचमुच वे बड़े सुन्दर हैं और उनका स्वभाव भी बहुत मधुर है। उनका लम्बा कद, कुछ गुलाबीपन लिये बलवान शरीर सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। मुझे उन पर गर्व है। उन्हें पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। मेरे होठों पर मुसकान थिरकने लगती है और मन मोर की तरह नाचने लगता है। उनका नाम सुनते ही मन में गुदगुदी-सी होने लगती है। मेरे भाई साहब मुझसे पूछते हैं कि आखिर तुम उनसे इतना प्यार क्यों करते हो! अब आप ही बताएँ मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ क्योंकि प्यार किया नहीं जाता, हो जाता है।

वे पिताजी के साथ प्रति दिन हमारे घर आते हैं। सच तो यह है कि उन्हें देखकर घर का हर प्राणी झूमने लगता है। उनके बारे में बड़ी-बड़ी बातें प्रसिद्ध हैं। उन्होंने विश्व के विभिन्न देशों की यात्रा कर रखी है। एक बार तो वे भारतीय प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल जी के साथ रानी एलिजाबेथ से मिलने इंगलैण्ड भी गये थे।

एक दिन उन्होंने मुझे बहुत हैरान कर दिया। हम सब लोग खाना खाने के लिए मेज के चारों ओर बैठे थे। उनके आने की प्रतीक्षा हो रही थी क्योंकि उनकी रसभरी मीठी बातों के बिना हमें खाने में कोई आनन्द नहीं आता। इतने में ही वे माताजी के साथ आते दिखायी पड़े। मगर यह क्या, आज तो उनका रंग-रूप ही बदला हुआ था। न चेहरे पर वह गुलाबीपन और न वस्त्रों में वह आकर्षण। मैं बहुत दुःखी हुआ तो मुझे बताया गया कि वे मिल नहीं सके इसलिए आज उनके इन भाई साहब के साथ ही खाने का आनन्द उठाया जाये। मन को कुछ शान्ति हुई।

न जाने क्या बात हुई, वे चार-पाँच दिन तक लगातार न आये। खाने के समय उनके बजाय उनके भाई साहब ही आने लगे। घर के और लोगों को तो शायद कुछ महसूस नहीं हुआ किन्तु उनके बिना

मेरा मन उदास रहने लगा क्योंकि मुझे उनके भाई साहब की बातों में मनचाहा रस नहीं मिलता था। मुझे उनका आना अखरने लगा। साधारण वेशभूषा में उनका भारी-भरकम शरीर मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन में उनके प्रति क्रोध बढ़ता जा रहा था। यहाँ तक कि एक दिन जब खाने की मेज पर मैंने उन्हें विराजमान देखा तो मैं बगैर खाना खाये ही अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गया।

पिताजी ने रूठने का कारण पूछा तो ममतामयी माताजी ने खूब नमक-मिर्च लगाकर सुना डाला। पिताजी तुरन्त मेरे पास आये और मुझे मनाने लगे। उन्होंने वचन दिया कि शाम के खाने के समय उन्हें अवश्य लाऊँगा। मेरा मन प्रसन्नता से नाच उठा। मैंने दिन बड़ी बेचैनी से काटा। आप तो जानते ही हैं कि प्रतीक्षा की घड़ियाँ कितनी भारी होती हैं। मैं यही सोचता—

तेरे प्रेम ने सिखायीं मुझे तीन बातें।
कभी हँसना, कभी रोना, कभी हैरान हो रहना ॥

आखिर शाम हुई। पिताजी दफ्तर से लौटे तो मैंने देखा, उनके साथ मेरे वे चहेते भी आ रहे हैं। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। आज खाना खाने बैठे तो मैंने उन्हें बिलकुल अपने पास ही बैठाया। उनसे बातचीत करने में मैं इतना लीन हो गया कि मैंने किसी और को उनसे बात ही न करने दी। यहाँ तक कि माताजी-पिताजी के बार-बार कहने पर भी मुझे खाने की कोई सुध नहीं थी। मेरे हृदय में आनन्द की तरंगें उठ रही थीं। वे भी मुझे देखकर इतने बेसुध हो गये थे कि उन्होंने किसी और की तरफ निगाह उठाकर भी नहीं देखा।

आप सोचते होंगे कि आखिर ये भाग्यवान कौन हैं। तो सुन लीजिए—ये हैं मेरे मनचीते 'श्रीमान दसहरी आम' और उनके भाई साहब हैं 'श्रीमान टपका आम।'

—उमेश माथुर

सुहानी वर्षा

राकेश गुप्त

वर्षा काल सुहाना आया ।
हम सबके मन को अति भाया ॥
बादल नभ में नित्य थिरकता ।
रिमझिम - रिमझिम मेंह बरसता ॥
छोटी मोटी बूँदें जल की ।
शोभा बढ़ा रहीं जंगल की ॥
चारों ओर बनी हरियाली ।
बिखर रही हीरों की थाली ॥
नदी युवा - सी हो इठलायी ।
पग - पग पर सुन्दरता छायी ॥
मीठे - मीठे आम पके हैं ।
चूस - चूस हम खूब छके हैं ॥
प्रातःकाल वर्षा ज
। छुट्टी मिल जाती ॥
कूद करें किलोलें ।
सबसे मीठी वाणी बोलें ॥

सदस्यता - फार्म

श्रीमान् भैया जी !

कृपया मुझे बाल-सभा का सदस्य बना लें।

नाम.....

पिता का नाम.....

अवस्था.....

रुचि.....

पूरा पता.....

.....

.....

तिथि..... हस्ताक्षर.....

इस बालक ने जो विवरण दिया है वह ठीक है।

हस्ताक्षर माता या पिता.....

लिफाफे पर नीचे छपा पता काटकर चिपका दें :—

सम्पादक 'सर्वसखा'
२०३४ बाजार सीताराम
दिल्ली-६

बाल-सभा के सदस्य बनिए

१६ वर्ष तक की अवस्था के बच्चे 'सर्वसखा' की बाल-सभा के सदस्य बन सकते हैं। सदस्य बनने वाले बच्चों के नाम हर महीने बाल-सभा में छपा करेंगे और उनकी लिखी कविता-कहानियाँ वगैरा भी छापी जायेंगी।

बाल-सभा का सदस्य बनने के लिए आप बराबर में दिया हुआ फार्म साफ-साफ भरकर भेज दें।

बनवारीलाल—१४ वर्ष, रुचि पठन-पाठन, लोअर चुटिया, राँची।

उषा गुप्त—१२ वर्ष, रुचि कहानियाँ पढ़ना, करौल बाग, नयी दिल्ली

कन्हैयालाल—१३ वर्ष, रुचि नाच-गाना, नयापुरा, कोटा।

प्रेमलता—१५ वर्ष, रुचि टिकट संग्रह करना, राइटगंज, गाजियाबाद।

शिवचन्द—१४ वर्ष, रुचि खेल कूद, महारानी रोड, इन्दौर।

[illegible] -११ वर्ष, रुचि सैर-का थाना (राजस्थान)।

इन्द्रकुमार वैश्य—१२ वर्ष, [illegible] हरियागंज, दिल्ली।

'सर्वसखा' के नियम

१. 'सर्वसखा' प्रत्येक मास के तीसरे सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२. 'सर्वसखा' में लगभग १०००पृष्ठों की सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना व प्रेरक विचारों से भरपूर ज्ञान-वर्द्धक मनोरंजक पाठ्य सामग्री प्रति वर्ष प्रकाशित करने की योजना है।

३. 'सर्वसखा' का वार्षिक शुल्क ४) चार रुपये तथा साधारण प्रति का मूल्य चालीस पैसे मात्र है। विशेषांक का मूल्य अलग होता है किन्तु स्थायी सदस्यों को वार्षिक शुल्क में ही मिलता है।

४. 'सर्वसखा' का वर्ष अँगरेजी सन् के जनवरी मास से आरम्भ होकर दिसम्बर में समाप्त होता है। वर्ष के किसी भी महीने में वार्षिक शुल्क ४) रु० भेजकर सदस्य बन सकते हैं।

५. सदस्यों को अपना शुल्क मनी-आर्डर से भेजना चाहिए। वी० पी० पी० भेजने का नियम नहीं है। मनीआर्डर के कूपन पर अपना नाम, पता, र[illegible] रकम भेजने का का[illegible]

६ [illegible] रत समय शीघ्र [illegible] के लिए अपनी सदस्य- [illegible] लिखें।

७. पत्र के उत्तर के लिए अपना पता-लिखा जवाबी कार्ड या टिकट-लगा लिफाफा अवश्य भेजें।

८. सदस्यता-शुल्क तथा अन्य प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक, 'सर्व-सखा' २०३४ बाजार सीताराम, दिल्ली-६ के नाम से करें।

९. 'सर्वसखा' में प्रकाशनार्थ रचनाएँ आदि सम्पादक 'सर्वसखा' २०३४ बाजार सीताराम, दिल्ली-६ के पते पर भेजें। प्रबन्ध की दृष्टि से यह आवश्यक है।

१०. लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी रचनाएँ कागज के एक ओर शुद्ध और स्पष्ट लिखी हुई या टाइप की हुई भेजें। प्रत्येक रचना पर अपना पूरा नाम व पता अवश्य लिखें।

११. अस्वीकृत रचनाएँ लौटाने का नियम नहीं है। इसलिए किसी भी रचना को भेजने से पूर्व उसकी प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रख लें। रचना प्रका- [illegible] पर अंक सेवा में भेज दिया [illegible] है।

१२. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ। प्रायः दो मास में समालोचना प्रकाशित करके अंक सेवा में भेज दिया जाता है।

SARVA-SAKHA, DELHI AUGUST 1966 REGD. NO. D-1625

मनोरंजन से भरपूर, समता-सद्भाव का प्रमुख प्रसारक

अपने प्रकार का अनूठा मासिक-पत्र

सर्वसखा

राम-कथा के माध्यम से जन-जागरण का विशिष्ट प्रयास

हास्यरस : देशी-विदेशी कथा-कहानी : कविता

व्यावहारिक ज्ञान-विज्ञान और धार्मिक सामग्री से ओतप्रोत

बच्चों, वृद्धों, युवकों, नवयुवतियों आदि परिवार के

सभी जनों के लिए विशेष उपयोगी

वार्षिक शुल्क ४) रु० **एक प्रति ४० पैसे**

याद रखिए !

'सर्वसखा' में कम-से-कम १००० पृष्ठों की मनोरञ्जनपूर्ण ज्ञानवर्द्धक सुन्दर सुपाठ्य सामग्री प्रति वर्ष दे[illegible] की [illegible]शाल योजना है !

वार्षिक शुल्क रुपये मात्र

अपना वार्षिक शुल्क आज [illegible]जिए !

व्यवस्थापक-'सर्वसखा', २०३४ बाजार सीताराम,

सम्पादक-मुद्रक-प्रकाशक [illegible]कृष्णदास 'रुचि'

क्षात्रशक्ति

राष्ट्रीय जागरण की मासिक पत्रिका

आर्य समाज क्षात्र शक्ति अंक

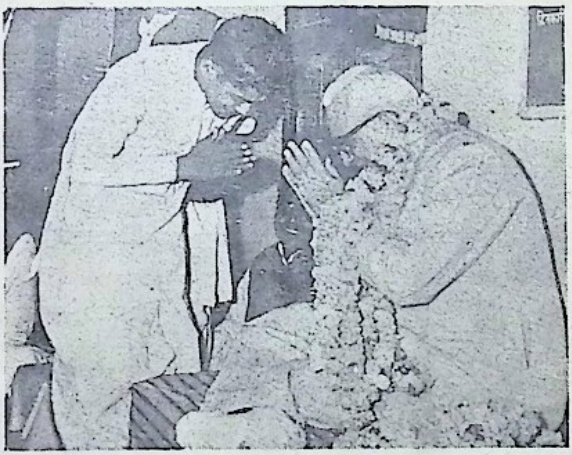

श्री मदन मोहन वर्मा अध्यक्ष विधान एवं आर्य प्र० सभा उ० प्र० को आर्य वीर दल आगरा मण्डल की ओर से महासचिव रामनारायण शास्त्री अभिनन्दन भेंट करके स्वागत करते हुए।